प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रंथ निर्माण योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित :

प्रथम संस्करण : वर्ष 1973

मूल्य : 10.00

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए-26/2, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर,
जयपुर-4

मुद्रक :
झूलेलाल प्रिन्टर्स,
जयपुर-2

प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए "वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत 1969 में पाँच हिन्दी भाषी प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गयी।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक तीन सौ से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गयी है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी।

चंदनमल बैद
अध्यक्ष

गो. श. सत्येन्द्र
निदेशक

निवेदन

जुलाई 1958 में स्नातकोत्तर विद्यार्थियों को प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र पढ़ाने का उत्तरदायित्व मुझे प्राप्त हुआ। सम्भवतः इसलिये कि इस विषय के पाठ्यक्रम में समावेश का आग्रह मेरा था। यह आग्रह दर्शनशास्त्र के पाठ्यक्रम के आधुनिकीकरण का अंग था न कि प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में मेरी गति का सूचक। उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिये मैंने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ किया। साथ ही तद्विषयक पुस्तकों और पत्रिकाओं की कमी की पूर्ति का प्रयास किया। बाद में सम्वर्धित सामग्री का लाभ उठाया। उपलब्ध ग्रन्थों में वैसन और ओकानर (1957) एम्ब्रोज़ और लाज़रोविट्स (1954) राइखेनबार (1947) तथा कोपी (1959) की कृतियों से मुझे विशेष सहायता मिली।

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के स्वाध्याय और लगभग डेढ़ दशक के अध्यापन के अनुभव पर आधारित है। ग्रन्थ पर उल्लिखित तर्कशास्त्रियों का प्रभाव स्पष्ट है। ग्रन्थ का उद्देश्य प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र का प्रारम्भिक ज्ञान करवाना है। इसलिए विषय के प्रतिपादन में स्पष्टता तथा सुबोधता पर अधिक ध्यान दिया गया है। तर्कशास्त्र की दार्शनिक समस्याओं के विवेचन की उपेक्षा की गयी है तथा अधि-तर्कशास्त्र का समावेश नहीं किया है। विषय को सुबोध तथा रोचक बनाने के लिए उदाहरण भारतीय वांगमय से लिए गये हैं। परम्परागत तर्कशास्त्र से परिचित विद्यार्थियों की सुविधा के लिए परम्परागत तर्कशास्त्र और प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के सम्बन्ध का जहाँ भी सम्भव हुआ है निर्दशन किया गया है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में युक्तियों की वैधता या अवैधता के परीक्षण में कुशलता प्राप्त करने पर बल दिया गया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के निमित्त प्रत्येक अध्याय के अन्त में अभ्यास के लिए अनेक युक्तियाँ दी गई हैं। इन युक्तियों के परीक्षण द्वारा न केवल निर्णय पद्धतियों पर अधिकार होता है वरन् दर्शनशास्त्र के ऐतिहासिक ज्ञान की संवृद्धि भी होती है, क्योंकि अधिकांश युक्तियाँ वही हैं जो दार्शनिकों ने अपने मत के प्रतिपादन में प्रस्तुत की हैं।

यद्यपि विरामांकन के लिए बिन्दुओं का प्रयोग सरल और वांछित है तथा तार्किक अचरों के लिए सम्बन्धित अक्षरों का, फिर भी कोपी सदृश लेखकों का अनुसरण करके प्रस्तुत ग्रन्थ में कोष्ठकों और तार्किक अचरों के

लिए प्रचलित प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। इस प्रयोग का प्रमुख कारण कोष्ठकों का गणितशास्त्र में प्रचलन है जिससे लगभग सभी विद्यार्थी परिचित हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी में लिखने का मेरा प्रथम प्रयास है। इसलिए भाषा की त्रुटियां सम्भव हैं। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का यथासम्भव मैंने उपयोग किया है। परन्तु प्रकाशित शब्दावली की अपूर्णता से विवश होकर कई पारिभाषिक शब्दों का हिन्दी रूपान्तर मैंने स्वयं किया है। आशा है विद्वज्जन उनको पसन्द करेंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना में कई विद्यार्थियों और सहयोगियों ने सहायता दी है। जब सन् 1958 में ग्रन्थ का श्रीगणेश हुआ तो उस समय के बी० ए० के विद्यार्थी श्री रामनारायण ने श्रुतलेखन का भार संभाला। लगभग 10 वर्ष बाद जब ग्रन्थ को प्रकाशित करने का संकल्प हुआ तो पाण्डुलिपि को ध्यान-पूर्वक पढ़ने तथा "सम्बन्धों के न्याय" की सामग्री इकट्ठा करने का कष्ट डॉ० रमेशदत्त मिश्र ने किया। सम्बन्धित तथा संशोधित पाण्डुलिपि का निरीक्षण डॉ० (कु०) रूप रेखा वर्मा ने किया। पाण्डुलिपि की सुलेख प्रतियां डॉ० कृष्ण कान्त शुक्ल ने तैयार की। सुलेख प्रतियों को प्रो० राजेन्द्र प्रसाद व श्री धर्मेन्द्र ने पढ़ने का कष्ट उठाया। श्री धर्मेन्द्र ने कतिपय सुझाव देकर लाभान्वित किया। श्री यशदेव 'शल्य' ने राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी से प्रकाशित करने का अविलम्ब निर्णय दिया तथा ग्रन्थ को अल्प समय में मुद्रित करवा दिया। प्रूफ-पाठन के लिए डॉ० रमेशदत्त मिश्र ने पुनः समय दिया। हिन्दी-अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली तथा अनुक्रमणिका के तैयार करने में कु० रमन तिवारी ने योगदान दिया। मैं इन उपरिलिखित सभी महानुभावों का आभारी हूं। अवशेष त्रुटियों के लिए केवल मैं उत्तरदायी हूं।

प्रस्तुत ग्रन्थ, जहाँ तक मुझे विदित है, हिन्दी में अपने विषय का पहला ग्रन्थ है। यदि यह ग्रन्थ प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में पाठक की रुचि उत्पन्न करने में सफल होता है और तत्सम्बन्धी उच्चतर ग्रन्थों की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है, तो मुझे सन्तोष होगा।

—राजनारायण

उच्चतर अध्ययन संस्थान
मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ।

12–1–1973

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

1

तर्कशास्त्र का स्वरूप

1·0 भाषा और संकेत

संकेत भौतिक वस्तुएँ हैं। कोई भौतिक वस्तु संकेत का रूप तब धारण करती है जब उसका सम्बन्ध किसी पदार्थ एवं व्यक्ति से होता है। अर्थात् संकेत वस्तुतः संकेतन-सम्बन्ध या निर्देशन-सम्बन्ध का बोधक है।

संकेत तीन प्रकार के होते हैं। धुंआ आग का संकेत करता है। आग और धुंआ में कारण-कार्य सम्बन्ध है। जो सम्बन्ध कार्य-कारण के द्योतक हैं उनके बताने वाले संकेतों को 'सूचकीय संकेत' कहते हैं। किसी व्यक्ति के फोटो (चित्र) और उस व्यक्ति में समानता या सादृश्यता पाई जाती है। जो संकेत 'समानता या सादृश्यता सम्बन्ध के द्योतक हैं उन्हें 'प्रतिभापरक संकेत' कहा जाता है। जब किसी संकेत' या किसी वस्तु का सम्बन्ध मान्यता परिपाटी या रूढ़ि पर आधारित होता है तो उसको 'रूढ़' या 'अभिसामयिक संकेत' कहते हैं। भाषा ऐसे ही संकेतों से बनी है। भाषाई संकेत को अन्य प्रकार के संकेतों से स्पष्ट करने के लिए 'प्रतीक' की संज्ञा दी जाती है।

भाषाई संकेतों (प्रतीकों) के लिए आवश्यक है कि वह प्रतिकृत हो सके। व्यक्तिक संकेत को 'चिह्न' कहते हैं। एक ही शब्द के भिन्न चिह्नों का एक ही अर्थ होता है। विभिन्न प्रकार के चिह्न जैसे हस्त-लिखित और मुद्रित, उच्चारित या लिखित, एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं। सदृश चिह्नों के वर्ग को 'प्रतीक' कहते हैं।

1·01 वाक्य और प्रतिज्ञप्ति

भाषाई प्रतीकों की सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई वाक्य है। साधारणतया वाक्य शब्दों से मिलकर बनता है। परन्तु कुछ शब्द वाक्य का काम कर सकते हैं। 'सत्यता' और 'असत्यता' वाक्य पर लागू होते हैं, शब्दों पर नहीं। शब्दों का अर्थ वाक्य द्वारा बताया जाता है। 'गांधी ने गोडसे को मारा' तथा गोडसे ने गांधी को मारा' दोनों वाक्यों में एक ही शब्द आए हैं अर्थात् दोनों का शब्दार्थ

एक ही है, परन्तु दोनों के वाक्यार्थ अलग हैं। वाक्यार्थ के आधार पर ही हम पहले वाक्य को असत्य और दूसरे को सत्य मानते हैं।

व्याकरण की दृष्टि से वाक्य पाँच प्रकार के होते हैं—

1. निश्चयार्थक जैसे 'राम वनवास को गए हैं।'
2. प्रश्नार्थक जैसे 'क्या राम वनवास को गए हैं ?'
3. आज्ञार्थक जैसे 'राम, वनवास को जाओ।'
4. उत्क्रोशात्मक जैसे 'क्या राम वनवास को गए हैं !'
   'आह, राम वनवास को गए हैं !'
5. इच्छाद्योतक जैसे 'राम वनवास में सकुशल रहें।'

इन पाँच प्रकार के वाक्यों में केवल पहला सत्य या असत्य हो सकता है, क्योंकि वह किसी वस्तुस्थिति या घटना का वर्णन करता है। उपर्युक्त उदाहरण मे यदि राम वस्तुतः वनवास को गए हैं तो 'राम वनवास को गए हैं' वाक्य सत्य है और राम वस्तुतः नहीं गए हैं तो असत्य है। अन्य चार प्रकार के वाक्यों के कर्म उनके नाम से स्पष्ट हैं। पाँचों प्रकार के वाक्यों को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि भाषा के मुख्यतः दो कर्म हैं—संज्ञात्मक और संवेगात्मक। विज्ञान तथा तर्कशास्त्र का सम्बन्ध भाषा के संज्ञानात्मक कर्म से है और साहित्य तथा कविता का संवेगात्मक कर्म से।

अब निम्नलिखित निश्चयार्थक वाक्यों पर विचार कीजिए—

1. इस समय पौने आठ बजा है।
2. इस समय आठ बजने में पन्द्रह मिनट बाकी हैं।
3. इस समय सात बज कर पैंतालीस मिनट हुए हैं।

उपर्युक्त तीनों वाक्य एक ही तथ्य को बताते हैं, यद्यपि उनके उद्देश्य और विधेय भिन्न हैं इसी प्रकार भिन्न भाषाओं के निम्नलिखित वाक्यों का एक ही निश्चित अर्थ है—

1. इदम् एकम् पुस्तकम्। (संस्कृत)
2. यह एक पुस्तक है। (हिन्दी)
3. दिस इज ए बुक। (अंग्रेज़ी)

किसी भी निश्चयार्थक वाक्य के अर्थ को 'प्रतिज्ञप्ति' कहते हैं। वाक्य के माध्यम से प्रतिज्ञप्ति व्यक्त होती है, परन्तु विभिन्न वाक्य एक ही प्रतिज्ञप्ति के द्योतक हो सकते हैं।

1·03 प्रतीकों का प्रयोग और उल्लेख

भाषा में प्रतीक के दो कार्य हैं। जब प्रतीक संकेतित वस्तु को इंगित

करता है तो प्रतीक का 'प्रयोग' होता है । जब प्रतीक ही संकेतित वस्तु है तो उसका 'उल्लेख' होता है ।

आम तौर से भाषा के प्रयोग में किसी वस्तु और उसके नाम में धोखा नहीं होता । हम वस्तुओं के बारे में ज्ञान करने के लिए नामों का प्रयोग करते हैं और कोई मूर्ख ही गांधी और उनके नाम का भेद करने में गड़बड़ करेगा । परन्तु जब भाषाई अभिव्यक्तियों के नामों को अभिव्यक्तियों से भेद करने का प्रश्न आता है तो कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । अभिव्यक्तियों को नाम देने का प्रचलित मानक तरीका उनको एकहरे या दुहरे उद्धरण चिह्नों से घो देना है ।

निम्नलिखित वाक्यों पर ध्यान दें ।

(1) हरयाणा एक प्रदेश है ।

(2) हरयाणा में चार अक्षर हैं ।

(3) 'हरयाणा' एक प्रदेश है ।

(4) 'हरयाणा' में चार अक्षर हैं ।

(5) 'हरयाणा' हरयाणा का एक नाम है ।

(6) "हरयाणा" हरयाणा के एक नाम का नाम है ।

प्रतीकों के प्रयोग का उल्लेख के भेद के अनुसार वाक्य (1) (4) (5) और (6) सत्य हैं और (2) और (3) असत्य । (3) (4) और (5) में 'हरयाणा' शब्द का उल्लेख है प्रयोग नहीं । (3) की असत्यता स्पष्ट करने के लिए हम 'शब्द' को 'हरयाणा' में जोड़ कर पढ़ें : (3) 'हरयाणा' शब्द एक प्रदेश है ।

उल्लेख और प्रयोग का भेद हम 'हरयाणा' शब्द का 'मोहन' नामकरण करके और स्पष्ट कर सकते हैं । मान लीजिए

(7) मोहन = 'हरयाणा'

अब देखिए कि (7) के आधार पर निम्नलिखित में से कौन-कौन वाक्य सत्य हैं—

(8) मोहन एक नाम है ।

(9) मोहन में चार अक्षर हैं ।

(10) मोहन में तीन अक्षर हैं ।

(11) 'मोहन' में तीन अक्षर हैं ।

(12) 'मोहन' एक प्रदेश का नाम है ।

स्पष्ट है कि (8) (9) और (11) सत्य हैं और (10) और (12)

असत्य हैं। यदि (12) में 'मोहन' का उल्लेख के बजाय प्रयोग होता तो निम्न-लिखित सत्य वाक्य प्राप्त होता—

(12) मोहन एक प्रदेश का नाम है।

1·1 तर्क का एक दृष्टान्त

'राम वन को जाएंगे' और भरत को राज्य मिलेगा, क्योंकि यही दो वरदान मैं माँगूंगी और महाराज दशरथ अपने वचन का पालन करेंगे। ऐसा विचार करके कैकेयी ने वरदान माँगे और उसका अनुमान सही हुआ—राम वन को गए और भरत को राज सिंहासन मिला। परन्तु उसके अनुमान में एक त्रुटि रही। भरत को राज्य का उत्तराधिकारी तो घोषित कर दिया गया, पर भरत ने स्वयं सिंहासन पर बैठने से इन्कार कर दिया और श्री राम की चरणपादुका को सिंहासन पर रख वनवास की अवधि भर राज्य कार्य सम्पादित किया।

कैकेयी की विचारधारा के प्रमुख अंशों को हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

(1) रघुवंशी वचन का पालन करते हैं।
दशरथ रघुवंशी हैं।
अतएव दशरथ वचन का पालन करेंगे॥

(2) राम पिता की आज्ञा का पालन करते हैं।
पिता की आज्ञा होगी कि वनवास को जाओ।
अतएव राम वनवास को जाएंगे।

(3) राजा घोषित होने पर घोषित व्यक्ति सिंहासन पर बैठता है।
भरत राजा घोषित होंगे।
अतएव भरत सिंहासन पर बैठेंगे।

1·2 युक्ति

उपर्युक्त दृष्टान्त तार्किक प्रक्रिया का निरूपण करता है। तर्क विचार-धारा का वह विशेष रूप है जिसमें कुछ माने हुए या प्रदत्त कथन से अन्य कथन निष्कर्ष रूप में प्राप्त किया जाता है। कैकेयी की विचारधारा के तीनों अंशों में पहले तथा दूसरे कथन तीसरे कथन के आधार का कार्य करते हैं और तीसरा कथन पहले दोनों के सम्मिलन से निष्कर्ष के रूप में प्राप्त होता है। ऐसे कथन-क्रमों को, जिनमें पूर्व कथनों से एक कथन को निगमित करने का "दावा" किया जाता है, युक्ति की संज्ञा दी जाती है। बोलचाल की भाषा में युक्ति का प्रयोग

विवाद, मतभेद अथवा असहमति के लिए होता है। परन्तु तर्कशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग तर्क की मौलिक इकाई के रूप में होता है।

1·21 युक्ति के अंश

किसी भी युक्ति में दो अंगों का होना अनिवार्य है—(1) आधार, हेतु अथवा साक्ष्य; (2) परिणाम अथवा निष्कर्ष। युक्ति के इन दोनों अंगों का पृथक्कीकरण तथा उनका आकार-प्रदर्शन निम्न दो प्रश्नों द्वारा सरलता से किया जा सकता है—

(1) लेखक अथवा वक्ता का उद्देश्य क्या है ? वह क्या स्थापित करना चाहता है ?

(2) अपने उद्देश्य को प्रमाणित करने के लिए वह क्या आधार प्रस्तुत करता है ?

पहले प्रश्न का उत्तर युक्ति का निष्कर्ष और दूसरे का उत्तर युक्ति के आधार वाक्य को निर्दिष्ट करता है। अतः वह कथन प्रतिज्ञप्ति जिसे अन्य कथनों या प्रतिज्ञप्तियों के आधार पर स्वीकृत किया जाता है, युक्ति के "निष्कर्ष" के नाम से जाना जाता है और जो कथन निष्कर्ष की स्वीकृति के लिए हेतु या साक्ष्य प्रदान करते हैं उन्हें "आधार वाक्य" की संज्ञा दी जाती है।

युक्ति के उपयुक्त दोनों अंगों का भेद सापेक्षिक है। एक ही प्रतिज्ञप्ति किसी युक्ति में आधार और अन्य युक्ति में निष्कर्ष हो सकती है ठीक वैसे ही जैसेकि एक ही व्यक्ति एक सन्दर्भ में पिता और दूसरे में पुत्र हो सकता है। देखिए—

(1) भारतवासी शान्तिप्रिय हैं।
गुजराती भारतवासी हैं।
अतः गुजराती शान्तिप्रिय हैं॥

(2) गुजराती शान्तिप्रिय हैं।
महात्मा गाँधी गुजराती हैं।
अतः महात्मा गाँधी शान्तिप्रिय हैं॥

यहाँ पर 'गुजराती शान्तिप्रिय हैं' पहली युक्ति में निष्कर्ष और दूसरी युक्ति में आधार वाक्य है।

सामान्यतः किसी युक्ति में पहले आधार वाक्य और बाद में निष्कर्ष पाया जाता है। परन्तु यह क्रम अनिवार्य नहीं है। निष्कर्ष को आधार प्रतिज्ञप्ति के पहले अथवा एक अधिक आधार-प्रतिज्ञप्तियाँ होने पर उनके मध्य में भी पाया जा सकता है। इस प्रकार आधार व निष्कर्ष के क्रमानुसार किसी भी युक्ति के निम्न रूप हो सकते हैं—

(क) ....(आधार प्रतिज्ञप्ति)
अतः......................(निष्कर्ष)

(ख) ....(निष्कर्ष)
क्योंकि...................(आधार प्रतिज्ञप्ति)

(ग) ....(आधार प्रतिज्ञप्ति)
अतः...................... (निष्कर्ष)
क्योंकि...................(आधार प्रतिज्ञप्ति)

युक्ति के अंगों की क्रम विभिन्नता से युक्ति के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता। तर्कशास्त्र के विद्यार्थी किसी भी क्रम में प्राप्त युक्ति को उसके सामान्य रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं।

1·22 तार्किक निर्देशक

आधार प्रतिज्ञप्ति एवं निष्कर्ष को सम्बन्धित करने वाले शब्दों को 'तार्किक निर्देशक' कहा जाता है। 'अतः', 'फलतः', 'इस प्रकार', 'परिणाम-स्वरूप', 'परिणामतः', 'अतएव', 'इसलिए' एवं अन्य समानार्थक शब्द निष्कर्ष के पहले आते हैं और उसके द्योतक हैं। 'क्योंकि', 'चूंकि', इत्यादि, आधार प्रतिज्ञप्ति के पहले आते हैं और उसके द्योतक हैं। पर यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक युक्ति में कोई न कोई निर्देशक शब्द व्यक्ति रूप में वर्तमान हो। निर्देशकों के अभाव में तर्कशास्त्री को अपनी ओर से निर्देशक शब्दों की पूर्ति करनी होती है। ऐसा करने में कभी-कभी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

1·23 तार्किक सम्बन्ध

आधार प्रतिज्ञप्ति और निष्कर्ष के बीच तार्किक निर्देशकों का व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप में वर्तमान होना इस बात की पुष्टि करता है कि उनके बीच में कोई विशिष्ट सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को तर्कशास्त्री 'आपदान' की संज्ञा देते हैं। इस सम्बन्ध के माध्यम से ही आधार प्रतिज्ञप्ति और निष्कर्ष एक सूत्र में बंध कर विचार की युक्ति रूपी मौलिक इकाई प्रस्तुत करते हैं। किसी कथन को हम आधार प्रतिज्ञप्ति की संज्ञा तभी दे सकते हैं जब वह निष्कर्ष को आपादित करता हो और निष्कर्ष तभी निष्कर्ष है जब उसका आपादन आधार प्रतिज्ञप्ति से हो। इस सम्बन्ध की इतनी अधिक महत्ता है कि आधुनिक तर्कशास्त्री इस सम्बन्ध के गुण-धर्मों को ही तर्कशास्त्र के अध्ययन का मुख्य विषय मानते हैं।

स्वरूप की दृष्टि से आधार प्रतिज्ञप्ति, निष्कर्ष, और उनको सार्थकता प्रदान करने वाला आपादान सम्बन्ध—यही तीनों युक्ति के अनिवार्य अङ्ग हैं। इन्हीं की सम्मिलित इकाई का नाम "युक्ति" है।

1·3 तर्क के दो रूप

युक्तियों के दो प्रमुख रूप हैं। निम्नलिखित युक्तियों पर ध्यान दीजिए-

(क) महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से बड़े-बड़े योद्धा लड़ रहे थे।
दुर्योधन स्वयं बड़ा पराक्रमी था।
द्रोणाचार्य एक कुशल सैन्य-संचालक था।
कर्ण महाबली था।
कृष्ण की अपार सैन्यशक्ति कौरवों के साथ थी।
आदि-आदि।
अतः कौरवों की विजय निश्चित थी।

(ख) धर्म और अधर्म के युद्ध में धर्म की विजय होती है।
महाभारत युद्ध में धर्म पाण्डवों के पक्ष में था।
अतः महाभारत युद्ध में पाण्डवों की विजय निश्चित थी।

उपर्युक्त उदाहरणों में (क) का निष्कर्ष आधार प्रतिज्ञप्तियों से सम्भावित होता है। अर्थात् ऐसी युक्तियों में आधार वाक्य निष्कर्ष की वैधता के लिए निश्चयात्मक साक्ष्य नहीं प्रस्तुत करते। ऐसी युक्तियों में निष्कर्ष की इस विशिष्टता को स्पष्ट करने के लिए निष्कर्ष के पहले 'यह सम्भावित है कि' जोड़ा जा सकता है। ऐसी युक्तियों को आगमनात्मक कहा जाता है और परम्परागत तर्कशास्त्री इन्हें 'आगमनात्मक तर्कशास्त्र' का विषय मानते हैं। पर आधुनिक तर्कशास्त्री इनका अध्ययन 'वैज्ञानिक पद्धति' का विषय मानते हैं।

उदाहरण (ख) के निष्कर्ष की वैधता आधार प्रतिज्ञप्तियों से अनिवार्यतः प्रमाणित होती है। ऐसी युक्तियों के निष्कर्ष की विशिष्टता को इंगित करने के लिए 'यह अनिवार्य है कि' निष्कर्ष के पहले जोड़ा जा सकता है। ऐसी युक्तियों को निगमनात्मक कहा जाता है। परम्परागत तर्कशास्त्री इनका अध्ययन 'निगमनात्मक तर्कशास्त्र' का विषय मानते हैं। आधुनिक तर्कशास्त्री ऐसी युक्तियों का अध्ययन ही तर्कशास्त्र का विषय मानते हैं। अर्थात् आधुनिक दृष्टिकोण से तर्कशास्त्र वस्तुतः निगमनात्मक तर्कशास्त्र का पर्यायवाची है।

1·4 वैधता एवं सत्यता

सत्यता एवं वैधता का भेद तर्कशास्त्र के लिए मूलभूत है। बोलचाल की भाषा में अक्सर यह भेद नहीं किया जाता। कभी-कभी तर्कशास्त्री भी बोलचाल की भाषा का अनुसरण करने लगते हैं जिससे कठिनाई पैदा होती है। वैधता एवं अवैधता युक्तियों के आकारात्मक गुण हैं। तर्कशास्त्री वैध और अवैध युक्तियों का भेद करता है। वस्तुतः वैध युक्तियों के प्रकार का अध्ययन ही तर्कशास्त्र का विषय है। सत्यता एवं असत्यता प्रतिज्ञप्तियों के गुण हैं। युक्ति की वैधता प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता अथवा असत्यता पर निर्भर नहीं है। किसी युक्ति में आधार प्रतिज्ञप्ति सत्य या असत्य हो सकती है, युक्ति वैध या अवैध और निष्कर्ष सत्य या असत्य। इसको तालिका के रूप में निम्न प्रकार बता सकते है—

आधार प्रतिज्ञप्ति	युक्ति	निष्कर्ष
1. सत्य	वैध	सत्य
2. सत्य	वैध	असत्य
3. सत्य	अवैध	सत्य
4. सत्य	अवैध	असत्य
5. असत्य	वैध	सत्य
6. असत्य	वैध	असत्य
7. असत्य	अवैध	सत्य
8. असत्य	अवैध	असत्य

उपर्युक्त आठ युक्ति-संहतियों में केवल दूसरी असम्भव है। किसी वैध युक्ति से जिसकी आधार प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य हों, असत्य निष्कर्ष नहीं प्राप्त हो सकता। अर्थात् यदि किसी वैध युक्ति की आधार प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य हैं तो निष्कर्ष असत्य नहीं हो सकता, वरन् अवश्य ही सत्य होगा। यदि किसी वैध युक्ति का निष्कर्ष असत्य है तो आधार प्रतिज्ञप्तियों में से एक अवश्य असत्य होगी।

असत्य आधार से सत्य निष्कर्ष का प्राप्त होना अटपटा प्रतीत होता है (संहति 5)। परन्तु निम्नलिखित उदाहरण संहति 5 का प्रमाण है—

सभी चन्द्रयात्री भारत के प्रधान मन्त्री थे।

नेहरू चन्द्रयात्री थे।

अतः नेहरू भारत के प्रधानमन्त्री थे।

प्रतिज्ञप्तियों की सत्यता अथवा असत्यता का निर्णय करना तर्कशास्त्र का कार्य नहीं है। तर्कशास्त्री सर्वज्ञ नहीं हैं। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में कौन प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य हैं और कौन असत्य, इसको बताना तर्कशास्त्र के सामर्थ्य के बाहर है। प्रतिज्ञप्तियों के सत्यापन के लिए वैज्ञानिक पद्धति का सहारा लेना होता है।

तर्कशास्त्र की समस्या निष्कर्ष की वैधता को निर्धारित करना है। इस समस्या का समाधान करने के लिए तर्कशास्त्र वैध युक्तियों अथवा वैध चिंतन के *प्ररूपों का अन्वेषण करता है। तर्कशास्त्र को इसीलिए वैधता के नियमों* का अध्ययन बताया जाता है। आगामी अध्यायों में इन्हीं नियमों का वर्णन और विवेचन किया गया है।

*ऐसा कहने में कि युक्ति संहतियों के आठ ही रूप हैं यह मान लिया गया है कि किसी भी प्रतिज्ञप्ति के केवल दो मूल्य होते हैं—सत्य अथवा असत्य। जिस तर्कशास्त्र की यह मान्यता होती है, उसे 'द्विमूल्यक तर्कशास्त्र' कहते हैं। ऐसा तर्कशास्त्र सहज-बुद्धि के समीप होने के कारण अधिक प्रचलित है। परन्तु अभिनव काल में बहु-मूल्यक तर्कशास्त्र का विकास हुआ है जिसमें दो के अतिरिक्त तीन (सत्य, असत्य, संदिग्ध) तथा अनन्त मूल्यों का उपयोग हुआ है। 'निश्चयमात्रक (सम्भव, असम्भव, अनिवार्य, सुसंगत इत्यादि) तर्कशास्त्र' के विकास ने द्विमूल्यक तर्कशास्त्र की सम्पूर्ति की है। इन सबका विवेचन इस परिचयात्मक ग्रन्थ में अपेक्षित नहीं है।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित वाक्यों का विरामांकन कीजिए—

1. कमल खिलते हैं
2. कमल खिलते हैं सत्य है
3. कमल खिलते हैं हिन्दी का वाक्य है
4. कमल में आठ पंखुड़ियाँ होती हैं
5. कमल में तीन अक्षर होते हैं

(ख) निम्नलिखित वाक्यों में से कौन सत्य है ?

1. शंकर भारतीय दार्शनिक थे।
2. 'शंकर' में तीन अक्षर हैं।

3. शंकर शंकर का एक नाम है।
4. शंकर 'शंकर' का एक नाम है।
5. रामानुज शंकर से लम्बा नाम है।
6. रामानुज का नाम शंकर के नाम से लम्बा है ।

(च) निम्नलिखित वाक्य शृंखलाओं में कौन युक्तियाँ हैं ? जो युक्तियाँ हैं वह किस प्रकार की—निगमनात्मक या आगमनात्मक ? प्रत्येक युक्ति का रूप उसके अंगों को पृथक् करके बताइए।

(1) चीन ने भारत पर आक्रमण किया, क्योंकि वह अपनी भूमि पर अधिकार करना चाहता था ।।

(2) बौद्धों ने संसार को क्षणभंगुर बताया। कुछ लोगों का मत है कि क्षणिकवाद शंकर के मायावाद से प्रमाणित होता है। जो भी हो, यथार्थवादी दार्शनिक क्षणिकवाद की सत्यता नहीं स्वीकार करते ।।

(3) शंकर और रामानुज दोनों अविद्या को मानते हैं। परन्तु रामानुज अविद्या और माया में भेद करते हैं। कुछ चिन्तकों की दृष्टि में शंकर वेदान्त का अविद्या और माया में भेद न करना एक दोष था जिसको शंकर वेदान्त के अनुयायियों को दूर करना चाहिए था ।।

(4) यदि भारत शांति में न विश्वास करता तो वह अणुबम को बना लेता। परन्तु भारत ने अणुबम नहीं बनाया ।।

(5) यदि रेल-यात्री चैन खींचने वालों को बता दें तो चैन की घटनाएँ कम हो जाएँ। खेद है रेल-यात्री ऐसा नहीं करते ।।

(6) सभी गायें दूध देती हैं। यह एक गाय है। अतः यह दूध देती है ।।

(7) यह कुत्ता काला है। वह कुत्ता भूरा है। अन्य कुत्ते सफेद या चितकबरे हैं। अतः कुत्तों का कोई रंग नहीं होता ।।

(8) जवाहरलाल उत्तर प्रदेश के निवासी थे। लाल बहादुर उत्तर प्रदेश के निवासी थे। इन्दिरा गांधी उत्तर प्रदेश की निवासिनी हैं। अतः उत्तर प्रदेश का निवासी भारत का प्रधान मन्त्री होता है ।।

(9) आज सूर्य पूर्व में उदय हुआ है। कल भी सूर्य पूर्व में उदय हुआ था। जहाँ तक मनुष्य की स्मृति है, सूर्य पूर्व में उदय होता रहा है। अतः भविष्य में भी सूर्य पूर्व में उदय होगा ॥

(10) भारत सरकार देश के विकास के लिए योजनाएँ बनाती है। परन्तु सब योजनाएँ दीर्घकालीन होती हैं। अच्छा हो कि सरकार योजना बनाना बन्द करदे ॥

(11) यह मेज भूरी है। अतः यह सफेद नहीं है ॥

2

प्रतिज्ञप्तियों का न्याय

2·1 सरल तथा मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ

निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियों पर ध्यान दीजिए—

(1) गुलाब लाल होता है।

(2) गेंदा लाल नहीं होता है।

(3) गुलाब लाल होता है तथा गेंदा पीला होता है।

(4) पुष्पहार या तो गुलाब या गेंदा का होगा।

(5) यदि पुष्पहार गुलाब का होगा तो अधिक सुन्दर होगा।

पहली प्रतिज्ञप्ति एक वस्तुस्थित का प्रतिपादन करती है। वह अस्तिवाचक अथवा विधायक है। दूसरी प्रतिज्ञप्ति एक वस्तुस्थिति के प्रतिपादन का निषेध करती है। अगर उसमें से 'नहीं' शब्द को हटा दें तो वह पहली के समान विधायक हो जाएगी। तीसरी, चौथी और पांचवीं प्रतिज्ञप्तियां दो प्रतिज्ञप्तियों से मिलकर बनी हैं। दूसरी प्रतिज्ञप्ति में अवयवी प्रतिज्ञप्तियों को 'तथा' शब्द से जोड़ा गया है। तीसरी प्रतिज्ञप्ति की अवयवी प्रतिज्ञप्तियों को 'या तो . . . या' शब्दों का प्रयोग करके सम्बन्धित किया गया है। पांचवीं प्रतिज्ञप्ति की अवयवी प्रतिज्ञप्तियों का 'यदि . . . तो' शब्दों द्वारा सम्बन्धित किया गया है। 'न' 'तथा', 'या' 'यदि . . . तो' एवं इसी प्रकार के अन्य शब्द जो प्रतिज्ञप्तियों को सम्बन्धित करने के लिए प्रयुक्त होते हैं, 'तार्किक सम्बन्धक' या 'तार्किक योजी' कहलाते हैं। 'न' 'नहीं' या अन्य निषेधात्मक शब्दों का प्रयोग एक प्रतिज्ञप्ति पर भी हो सकता है। जिस प्रतिज्ञप्ति में तार्किक सम्बन्धक नहीं पाए जाते हैं वह 'सरल प्रतिज्ञप्ति' कहलाती है। और तार्किक सम्बन्धकों द्वारा जिन प्रतिज्ञप्तियों को विभूषित किया जाता है, उनको 'मिश्र प्रतिज्ञप्ति' कहा जाता है। अर्थात् मिश्र प्रतिज्ञप्तियां सरल प्रतिज्ञप्तियों का निषेध करके या जोड़ करके बनती हैं। सरल प्रतिज्ञप्तियां मिश्र प्रतिज्ञप्तियों में अवयव या

मूलतत्व के रूप में वर्तमान रहती हैं। मिश्र प्रतिज्ञप्ति मिश्र प्रतिज्ञप्तियों को मिलाकर भी बन सकती हैं। यथा

(6) यदि पुष्पहार गुलाब का होगा तो अधिक सुन्दर होगा और मंत्री जी अधिक प्रसन्न होंगे।

यहाँ (6) में (5) सम्मिलित है। छहों प्रतिज्ञप्तियों में से पहली सरल है बाकी पाँचों मिश्र हैं। भौतिकशास्त्र की उपमा को अपना कर सरल प्रतिज्ञप्ति को 'परमाणविक प्रतिज्ञप्ति' और मिश्र प्रतिज्ञप्ति को 'अणविक प्रतिज्ञप्ति' भी कहा जाता है।

2·2 प्रतिज्ञप्तियों का प्रतीकीकरण

सरल प्रतिज्ञप्तियों को वर्णमाला के मध्य अक्षरों, 'प' 'फ' 'व' 'भ' (अथवा '$प_1$' '$प_2$' '$प_3$' '$प_न$') द्वारा प्रतीकृत करने की परिपाटी है। विभिन्न तार्किक सम्बधकों के लिए विभिन्न प्रतीकों के प्रयोग करने की परिपाटी है। जो प्रतीक सरल प्रतिज्ञप्तियों के लिए प्रयुक्त होते हैं उन्हें 'प्रतिज्ञप्तीय चर' या 'प्रतिज्ञप्तीय परिवर्त' कहा जाता है, क्योंकि प्रतिज्ञप्तीय चरों का अर्थ प्रतीकृत प्रतिज्ञप्ति के अनुसार बदलता रहता है या चलायमान होता है। तार्किक सम्बन्धकों का अर्थ हर प्रतिज्ञप्ति में एक ही रहता है। इसलिए इनके प्रतीकों को 'तार्किक अचर' कहा जाता है।

सरल प्रतिज्ञप्तियों को कई प्रकार से मिलाकर मिश्रित प्रतिज्ञप्ति बनाई जाती है। 'गुलाब लाल होता है और गेंदा पीला होता है' इस मिश्र प्रतिज्ञप्ति में दो सरल प्रतिज्ञप्तियों का संयोजन हुआ है। सरल प्रतिज्ञप्तियों के बीच इस प्रकार के सम्बन्ध को सामान्य भाषा में 'और', 'अथवा', 'तथा', 'व', 'एवं' आदि समानार्थक शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है। इस सम्बन्ध को एक बिन्दु '·' द्वारा प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में इंगित किया जाता है। बिन्दु प्रतीक का प्रयोग करके हम उपर्युक्त मिश्र प्रतिज्ञप्ति को इस प्रकार लिखते है 'गुलाब लाल होता है, गेंदा पीला होता है'। यदि हम पहली सरल प्रतिज्ञप्ति के लिए 'प' और दूसरी के लिए 'फ' अक्षरों का प्रयोग करें तो इसी प्रतिज्ञप्ति को 'प · फ' द्वारा प्रतीकृत किया जा सकता है। 'और' शब्द के प्रयोग से साधारणतया संयोजन सम्बन्ध का बोध होता है, पर ऐसा आवश्यक नहीं है। इस शब्द का अन्य अर्थों में भी प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ 'लक्ष्मण और शत्रुघ्न युगल भाई हैं' प्रतिज्ञप्ति में 'और' के प्रयोग से प्रतिज्ञप्ति मिश्र नहीं बन

जाती । यह प्रतिज्ञप्ति सरल है । यहाँ पर 'और' भाई सम्बन्ध का सूचक है । (देखिए सम्बन्धों का न्याय)

'यह सत्य नहीं है कि चाँदी सोने से अधिक मूल्यवान है' प्रतिज्ञप्ति भी मिश्र है, क्योंकि इसमें सरल प्रतिज्ञप्ति 'चाँदी सोने से अधिक मूल्यावन है' का निषेध या व्याघात किया गया है । इस निषेध को एक वक्र लकीर '~' द्वारा निर्दिष्ट करते हैं । साधारण भाषा में किसी प्रतिज्ञप्ति के निषेध को हम कई प्रकार से व्यक्त करते हैं । 'चाँदी सोने से अधिक मूल्यवान नहीं है, "ऐसी बात नहीं है कि चाँदी सोने से अधिक मूल्यवान है," यह असत्य है कि चाँदी सोने से अधिक मूल्यवान है 'आदि कथन भी उपर्युक्त तथ्य को ही व्यक्त करते हैं । किसी प्रतिज्ञप्ति के लिए यदि 'प' का प्रयोग करें तो उसके निषेध को 'प' के द्वारा हम प्रतीकृत कर सकते हैं ।

जब दो अथवा दो से अधिक सरल प्रतिज्ञप्तियों को 'अथवा' या 'या' शब्द के द्वारा मिश्रित करते हैं तो जो परिणामी मिश्र प्रतिज्ञप्ति बनती है उसे वियोजक प्रतिज्ञप्ति कहते हैं । साधारण भाषा में 'या' शब्द दो विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है । उदाहरणार्थ 'राम अथवा श्याम तुम को स्टेशन पर मिलेंगे' कहने में 'अथवा' शब्द से यह सूचित नहीं होता कि राम और श्याम दोनों स्टेशन पर नहीं मिलेंगे । 'बीमार या बेकार व्यक्तियों को सहायता मिलेगी' प्रतिज्ञप्ति से यह सूचित होता है कि व्यक्ति चाहे बीमार हो, चाहे बेकार, और चाहे बेकार और बीमार दोनों ही हो, तीनों ही अवस्थाओं में उसे सहायता मिलेगी ।' 'या' शब्द के इस अर्थ को दुर्बल या समावेशक अर्थ कहते हैं । इसके विपरीत 'या तो वह मरेगा' या जिएगा प्रतिज्ञप्ति मे मरना या जीना दोनों में से एक ही बात सत्य हो सकती है, दोनों एक साथ नहीं । (या' के इस अर्थ को सबल या व्यावर्तक कहते हैं ।)

समावेशक 'या' का जिस मिश्र प्रतिज्ञप्ति में प्रयोग होता है उसकी सत्यता के लिए कम से कम एक सरल प्रतिज्ञप्ति का सत्य होना अनिवार्य है यद्यपि दोनों अथवा सभी वियोजी प्रतिज्ञप्तियाँ भी सत्य हो सकती हैं । पर जिस मिश्र प्रतिज्ञप्ति में व्यावर्तक 'या' का प्रयोग होता है उसकी सत्यता के लिए कम से कम एक विकल्पित प्रतिज्ञप्ति का सत्य होना और दूसरी का असत्य होना अनिवार्य है । तात्पर्य यह कि दोनों अथवा सभी विकल्पित प्रतिज्ञप्तियाँ एकसाथ सत्य नहीं हो सकतीं । 'या' के दोनों प्रयोगों में समानता यह है कि इनसे योजित मिश्र प्रतिज्ञप्ति की सत्यता के लिए कम से कम एक

प्रतिज्ञप्ति का सत्य होना अनिवार्य है। 'या' के इसी न्यूनतम अर्थ का प्रतीक पत्नी की आकृति 'v' है और दूसरे व्यावर्तक अर्थ को व्यक्त करने के लिए उल्टी अथवा आवृत्त पत्नी '∧' या 'ⓥ' की आकृति प्रचलित है। किसी भी मिश्र प्रतिज्ञप्ति में यदि हम घटक-प्रतिज्ञतियों के लिए 'प' और 'फ' अक्षरों का प्रयोग करें तो समावेशक अर्थ होने पर 'प v फ' तथा व्यावर्तक अर्थ को 'प ∧ फ' या 'प ⓥ फ' द्वारा प्रतीकृत किया जायगा। पहली अभिव्यक्ति में घटक-प्रतिज्ञप्तियों को वियोज्य एवं मिश्र-प्रतिज्ञप्ति को वियोजक और दूसरी अभिव्यक्ति में घटकों को 'विकल्प' तथा समग्र प्रतिज्ञप्ति को 'वैकल्पिक' कहते हैं।

कुछ मिश्र प्रतिज्ञप्तियों में घटक-प्रतिज्ञप्तियों के मध्य आपादन का सम्बन्ध पाया जाता है। जैसे 'यदि पानी बरसेगा तो छत भीग जाएगी'। इन्हें 'आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति' कहते हैं और हेतु रूपी पहली घटक-प्रतिज्ञप्ति को 'आपादी' तथा परिणाम रूपी दूसरी प्रतिज्ञप्ति को 'आपाद्य' कहते हैं। ऐसी मिश्र प्रतिज्ञप्तियों में न तो आपादी प्रतिज्ञप्ति को स्वतन्त्र रूप से सत्य बताया जाता है और न ही आपाद्य प्रतिज्ञप्ति को, वरन् केवल यह स्वीकार किया जाता है कि यदि आपादी सत्य है तो आपाद्य भी सत्य होगा। तात्पर्य यह कि आपादी सत्य हो और आपाद्य असत्य हो ऐसा एकसाथ होना असम्भव है।

यदि हम विभिन्न आपादनात्मक प्रतिज्ञप्तियों की परीक्षा करें तो पता चलेगा कि आपादन के कई रूप हो सकते हैं। 'यदि सभी खिलाड़ी स्वस्थ्य होते हैं और महेन्द्र एक खिलाड़ी है, तो महेन्द्र स्वस्थ है' में पहली दो आपादी एवं अन्तिम आपाद्य प्रतिज्ञप्ति के बीच आपादन तार्किक है। 'यदि कोई व्यक्ति क्वाँरा है तो वह अविवाहित है' प्रतिज्ञप्ति में आपादन परिभाषात्मक है। 'यदि लकड़ी को पानी में डाला जाए तो वह तैरेगी' प्रतिज्ञप्ति में आपादन न तो तार्किक है और न परिभाषात्मक, बल्कि कार्य-कारणात्मक सम्बन्ध पर आधारित है, और ऐसे आपादन को विज्ञान अथवा अनुभव के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु 'यदि सूर्य आग से बना है तो मैं संसार के लिए निरर्थक हूँ' प्रतिज्ञप्ति में आपादी से आपाद्य का आपादन केवल निर्णयात्मक है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि आपादन के विभिन्न रूप होते हैं। परन्तु विभिन्न रूपों में आपादन सम्बन्धों का एक न्यूनतम एवं समान अर्थ अवश्य विद्यमान है। वह अर्थ यह है कि यदि आपादी सत्य है और आपाद्य असत्य

तो पूरी प्रतिज्ञप्ति असत्य होगी। अर्थात् 'यदि प तो फ' में 'प' का सत्य और 'फ' का असत्य होना एकसाथ सम्भव नहीं। आपादन के इस अर्थ को वस्तुगत आपादन की संज्ञा दी जाती है और इसे घोड़े की नाल के प्रतीक '⊃' से प्रतीकृत किया जाता है।

संक्षेप में मिश्र प्रतिज्ञप्तियों के मुख्य प्रकार एवं प्रतीक निम्नलिखित हैं—

(1) व्याघात = ∼प
(2) संयोजन = प · फ
(3) वियोजन = प ∨ फ
(4) विकल्प = प ∧ फ या प ⓥ फ
(5) आपादन = प ⊃ फ

2·3 सत्यताफलन एवं सत्यता-तालिका

उपर्युक्त प्रतिज्ञप्तियों के विभिन्न रूपों को 'सत्यताफलनी' मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ अथवा संक्षेप में 'सत्यता फलन' भी कहा जाता है, क्योंकि इन सभी प्रतिज्ञप्तियों का सत्यता-मूल्य उनकी घटक-प्रतिज्ञप्तियों के सत्यता-मूल्य से अनिवार्यत: निर्धारित होता है।

प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति के साधारणतया केवल दो ही सत्यता-मूल्य हो सकते हैं, सत्य अथवा असत्य। अतएव सरल प्रतिज्ञप्तियों के सम्बन्ध से जो मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ बनती हैं वह भी या तो सत्य होती हैं अथवा असत्य, और यह निर्धारित घटक-प्रतिज्ञप्तियों के सत्यता मूल्य द्वारा निश्चित रूप से ठीक उसी प्रकार हो जाता है जैसे गणित में किसी फलन के चरों का मूल्य निर्धारित कर देने पर उसका मूल्य निश्चित हो जाता है।

यदि हम मिश्र प्रतिज्ञप्ति 'सूर्य चमक रहा है तथा तापमान 70 डिग्री है' उदाहरण लें तो उपर्युक्त विवेचन के अनुसार यह प्रतिज्ञप्ति उसी दशा में सत्य होगी जबकि इसकी दोनों घटक–प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य हों। यदि इनमें से कोई या दोनों ही असत्य हैं तो मिश्र प्रतिज्ञप्ति भी असत्य होगी।

किसी भी सत्यताफलनी मिश्र प्रतिज्ञप्ति का सत्यता-मूल्य उसकी घटक-ज्ञप्तियों के सत्यता मूल्य से किस प्रकार निश्चित किया जा सकता है, इसे एक 'सत्यता-तालिका' द्वारा बताया जा सकता है। सत्यता तालिका में किसी प्रतिज्ञप्ति के सत्य होने पर 'स' और असत्य होने पर 'अ' का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इन अक्षरों की अपेक्षा इन्हीं सत्यता मूल्यों के लिए

क्रमशः '1' तथा '0' का प्रयोग अधिक सुविधाजनक होता है, तथा भविष्य में इन्हीं अंकों का प्रयोग किया जाएगा।

2·31 निषेध अथवा व्याघात

यदि हम किसी प्रतिज्ञप्ति असत्य का, जो मूलतः सत्य है, निषेध करते हैं तो फलस्वरूप प्राप्त की हुई प्रतिज्ञप्ति होती है। यदि मूल प्रतिज्ञप्ति असत्य थी तो उसका निषेध सत्य होगा। उदाहरणार्थ 'यदि गाँधी जी भारतीय थे' सत्य है तो 'गाँधी जी भारतीय नहीं थे' तथा 'यह असत्य है कि गाँधी जी भारतीय थे' दोनों ही निषेध असत्य होंगे। इसी प्रकार 'गाँधी जी भारत के सम्राट् थे' असत्य प्रतिज्ञप्ति का निषेध 'गाँधी जी भारत के सम्राट् नहीं थे' सत्य होगा। इसी तथ्य को संक्षिप्त रूप में निम्न सत्यता-तालिका द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

प	~प
1	0
0	1

अर्थात् जब किसी प्रतिज्ञप्ति के आगे निषेध का प्रतीक लगा दिया जाता है तो उसका सत्यता मूल्य 1 से 0 या 0 से 1 में बदल जाता है। और यदि किसी प्रतिज्ञप्ति के निषेध का निषेध किया जाता है तो मूल प्रतिज्ञप्ति प्राप्त हो जाती है। फलतः '~~प प'

2·32 संयोजन

संयोजन के स्वरूप की विवेचना ऊपर की जा चुकी है इसलिए यहाँ केवल इसकी सत्यता-तालिका द्वारा अभिव्यक्ति ही शेष है, जो निम्नलिखित है—

प	फ	प · फ
1	1	1
1	0	0
0	1	0
0	0	0

2·33 वियोजन

'या' शब्द के दो अर्थ ऊपर बताए गए हैं। दोनों अर्थ एक-दूसरे से अलग होते हुए भी समावेशक अर्थ में व्यावर्तक अर्थ आंशिक रूप में निहित है, अतएव उसी अर्थ की सत्यता-तालिका यहाँ दी जा रही है—

प	फ	प v फ
1	1	1
1	0	1
0	1	1
0	0	0

2·34 आपादन

इस फलन की सत्यता-तालिका व्याघातक एवं वियोजक फलनों की सत्यता तालिकाओं को मिलाकर व्यक्त की जा सकती है। क्योंकि 'प ⊃ फ' वास्तव में '∼प v फ' के समान है। उदाहरण के लिए 'यदि अमेरिका रूस पर आक्रमण करेगा तो योरुप का नाश हो जाएगा' प्रतिज्ञप्ति का यही अर्थ है कि 'या तो अमेरिका रूस पर आक्रमण नहीं करेगा या योरुप का नाश हो जाएगा।' दोनों मिश्र प्रतिज्ञप्तियों मे केवल शैली का भेद है, जिसमें पहली दूसरे की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। इस प्रकार '∼प v फ' की सत्यता-तालिका ही 'प ⊃ फ' की सत्यता-तालिका है, जोकि इस प्रकार है—

प	∼प	फ	प ⊃ फ
1	0	1	1
1	0	0	0
0	1	1	1
0	1	0	1

'प ⊃ फ' की सत्यता-तालिका का प्रचलित रूप निम्नलिखित है—

प	फ	प ⊃ फ
1	1	1
1	0	0
0	1	1
0	0	1

आपादन की सत्यता-तालिका की पहली पंक्ति में दोनों प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य हैं अतएव आपादन का सम्बन्ध सत्य है। दूसरी पंक्ति में पहली प्रतिज्ञप्ति सत्य है और दूसरी असत्य अतएव आपादन का सम्बन्ध असत्य है। तीसरी पंक्ति में पहली प्रतिज्ञप्ति असत्य है और दूसरी सत्य है परन्तु आपादन सत्य है। चौथी

पंक्ति में दोनों प्रतिज्ञप्तियाँ असत्य हैं परन्तु आपादन सत्य है । अर्थात् आपादन तभी असत्य होता है जबकि पहली प्रतिज्ञप्ति सत्य है और दूसरी असत्य है ।

आधुनिक तर्कशास्त्र में आपादन की सत्यता असत्यता का यह अर्थ साधारण भाषा के अर्थ से भिन्न है । तर्कशास्त्र में एक सत्य प्रतिज्ञप्ति किसी भी सत्य या असत्य प्रतिज्ञप्ति से आपादित होती है और एक असत्य प्रतिज्ञप्ति एक सत्य और दूसरी असत्य प्रतिज्ञप्ति से आपादित होती है । तथा दो असत्य प्रतिज्ञप्तियों से भी सत्य प्रतिज्ञप्ति आपादित होती है । तर्कशास्त्र से आपादन के इस अर्थ को साधारण भाषा के अर्थ से विभेद करने के लिए तर्कशास्त्र में प्रयुक्त आपादन को 'वस्तुगत आपादन' की संज्ञा दी गई है और इस प्रयोग के कारण कई विरोधाभास उत्पन्न होते हैं जिनको 'वस्तुगत आपादन के विरोधाभास की संज्ञा दी जाती है ।

2·4 सत्यता फलनों का अन्तर्सम्बन्ध

आपादन की व्याख्या निषेध तथा वियोजक फलनों के द्वारा की जा चुकी है । इससे यह स्पष्ट है कि तार्किक अचर की व्याख्या दूसरे तार्किक अचरों के द्वारा कर सकते हैं । चूंकि किसी तार्किक अचर की सत्यता-तालिका अपनी अलग होती है इसलिए एक अचर की व्याख्या दूसरे अचर द्वारा तब सही समझी जा सकती है, जबकि दोनों की सत्यता तालिकाएं एक-दूसरे के समान हों और एक-दूसरे से परिवर्तनशील हों ।

जिस प्रकार हम 'प ⊃ फ' को ~प v फ' द्वारा व्यक्त कर सकते हैं उसी प्रकार आपादन को निषेध और संयोजन द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है । उदाहरण के लिए 'यदि वह विष खाए तो मरेगा' का वही अर्थ है जोकि 'यह असत्य है कि वह विष खाएगा और मरेगा नहीं' का है । '~ (प·~फ)' की निम्नलिखित सत्यता-तालिका से यह प्रमाणित होता है ।

प	फ	~फ	(प · ~फ)	~(प · ~फ)
1	1	0	0	1
1	0	1	1	0
0	1	0	0	1
0	0	1	0	1

इस तालिका का अन्तिम स्तम्भ 'प ⊃ फ' की सत्यता-तालिका के अन्तिम स्तम्भ के सर्वसम है । अर्थात् 'प ⊃ फ' '~पvफ' और '~(प · ~फ)'

तीनों तर्कशास्त्र की दृष्टि में समानार्थी और एक-दूसरे का स्थान ग्रहण करने योग्य हैं।

संयोजन की भी व्याख्या निषेध तथा वियोजन द्वारा हो सकती है और निषेध तथा आपादन द्वारा भी। उदाहरण के लिए 'वह मूर्ख भी है और आलसी भी' का अर्थ कि 'यह असत्य है कि वह मूर्ख नहीं है या वह आलसी नहीं है' तथा 'यह असत्य है कि यदि वह मूर्ख है तो वह आलसी नहीं है।' अर्थात् '(प · फ)≡∼(∼प ∨∼फ)≡∼(प⊃ ∼फ)'। यह सामानार्थकता निम्नलिखित तालिकाओं से स्पष्ट है—

प	फ	∼प	∼फ	(∼प ∨∼फ)	∼(∼प ∨∼फ)
1	1	0	0	0	1
1	0	0	1	1	0
0	1	1	0	1	0
0	0	1	1	1	0

प	फ	∼फ	(प⊃ ∼फ)	∼(प⊃ ∼फ)
1	1	0	0	1
1	0	1	1	0
0	1	0	1	0
0	0	1	1	0

वियोजन को भी निषेध तथा वियोजन और निषेध तथा आपादन के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—'(प ∨ फ)≡∼(∼प · ∼फ) ≡(∼प⊃)।' उदाहरण के लिए 'यह पत्र या तो नकली है या मूल्यवान' का अर्थ वही है जोकि 'यह असत्य है कि यह पत्र न तो नकली है और न मूल्यवान' तथा 'यदि यह पत्र नकली नहीं है तो मूल्यवान है' का है। यह समानार्थकता निम्नांकित सत्यता तालिकाओं से स्पष्ट है—

प	फ	∼प	∼फ	(∼प · ∼फ)	∼(∼प · ∼फ)
1	1	0	0	0	1
1	0	0	1	0	1
0	1	1	0	0	1
0	0	1	1	1	0

प	फ	∼प	∼प ⊃ फ
1	1	0	1
1	0	0	1
0	1	1	1
0	0	1	0

संक्षेप में अचरों की अन्तर्व्याख्या इस प्रकार है—

(1) (प ⊃ फ) ≡ (∼प ∨ फ) ≡ ∼(प · ∼फ) ।

(2) (प ∨ फ) ≡ ∼(∼प · ∼फ) ≡ (∼प ⊃ फ) ।

(3) (प फ) ≡ ∼(∼प ∨ ∼फ) ≡ ∼(प ⊃ ∼फ) ।

2·5 कुछ और अचर

यदि ऊपर दी गई सत्यता तालिकाओं पर हम ध्यान दें तो पाएंगे कि प्रत्येक द्वि प्रतिज्ञप्तीय सत्यता फलन का सत्यता मूल्य चार अंकों द्वारा व्यक्त किया जाता है जिनमें 1 या 0 यही दो संख्याएं होती हैं। जैसे संयोजक फलन में जो चार अंक्क आते हैं उनमें 1 और 0 का क्रम 1000, वियोजन में 1110 और आपादन में 1011 के रूप में है। इन संख्याओं को हम सत्यता फलन की 'साँचा-संख्याएँ' कह सकते हैं। स्पष्ट है कि यदि दो फलनों की साँचा-संख्या एक ही है तो वह दोनों फलन भी सर्वसम और अन्तर्परिवर्तनीय हैं। उदाहरण के लिए 'प ⊃ फ' और '∼प ∨ फ' दोनों सर्वसम हैं, क्योंकि उन दोनों की साँचा-संख्या '1011' ही है।

2·51 प्रत्यापादन

कभी-कभी वाक्यों का प्रारम्भ 'यदि' के बजाय 'केवल यदि' से होता है। यह दोनों शब्द विभिन्न सम्बन्धों के सूचक हैं। उदाहरण के लिए एक पति घर जाकर पत्नी से कहता है 'मुझे बनारस को जाने वाली गाड़ी पकड़ना है। मुझे गाड़ी मिल सकती है केवल यदि तुम सामान बांधने में मदद दो।' पत्नी सामान बँधवा देती है परन्तु जब पति स्टेशन पर पहुँचते हैं तो गाड़ी जाती दीखती है। क्या पति का कथन असत्य था? क्योंकि पति के कथनानुसार पत्नी ने सामान बांधने में मदद की, फिर भी गाड़ी छूट गई। वस्तुतः पति का कथन गलत न था। उसने यह नहीं कहा था कि 'यदि तुम सामान बांधने में मदद दोगी तो मुझे गाड़ी मिल जाएगी।' उसका कहना था कि गाड़ी मिलने के लिए यह आवश्यक है कि पत्नी सामान बांधने में मदद दे। सामान बांधना

गाड़ी पाने के लिए आवश्यक दशा थी परन्तु पर्याप्त दशा नहीं। उसके कहने का अर्थ था कि यदि मुझे गाड़ी मिलती है तो तुम्हें सामान बाँधने की मदद अवश्य देनी होगी।

जिन आपादनात्मक प्रतिज्ञप्तियों में 'केवल यदि' का प्रयोग होता है उनमें जिस प्रतिज्ञप्ति के साथ 'केवल यदि' प्रयुक्त होता है वह आपाद्य होती है। साधारणतया आपादी पहले आता है और आपाद्य बाद में। परन्तु जब 'केवल यदि' का प्रयोग होता है तो आपाद्य पहले आता है और आपादी बाद में। इसलिए ऐसी आपादनात्मक प्रतिज्ञप्तियों को प्रत्यापादन की संज्ञा दी जाती है। यह संज्ञा अधिक प्रचलित नहीं है।

प्रत्यापादन की सत्यता-तालिका इस प्रकार होगी—

फ	प	फ ⊃ प
1	1	1
0	1	1
1	0	0
0	0	1

यदि 'केवल यदि' से सुशोभित प्रतिज्ञप्ति किसी आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति मे बाद में भी आती है तो भी वह आपाद्य है। जैसे 'मैं गाड़ी पकड़ सकूँगा केवल यदि तुम मुझे सामान बाँधने में मदद दोगी।'

2·52 सर्वसमिका

दो प्रतिज्ञप्तियों के सत्यता मूल्य (सत्यता ढांचा) एक ही होने पर 'सर्वसम' कहा जाता है। प्रतिज्ञप्तियों के कलन में यह सुविधाजनक होता है कि हम इस सर्वसमिका सम्बन्धक को एक विशिष्ट प्रतीक द्वारा व्यक्त करें और जो प्रतीक इसके लिए अपनाया गया वह यह '≡' है। इसलिए यदि 'प' और 'फ' का सत्यता मूल्य एक ही है तो 'प≡फ' सत्य है अन्यथा असत्य। इस तार्किक अचर की सत्यता-तालिका निम्नलिखित प्रकार की है।

प	फ	प≡फ
1	1	1
1	0	0
0	1	0
0	0	1

अर्थात् इसकी ढांचा संख्या 1001 है।

तर्कशास्त्र के इस सर्वसमिका अचर को प्रचलित 'समानता' शब्द से व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसके स्वरूप का सच्चा ज्ञान आपादन और प्रत्यापादन का संयोजन करके पाया जा सकता है। आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति में यदि ... तो' सम्बन्धक शब्दों का प्रयोग होता है। प्रत्यापादनात्मक प्रतिज्ञप्ति में 'केवल यदि' शब्दों का प्रयोग होता है। सर्वसमिकात्मक प्रतिज्ञप्ति के लिए 'यदि और केवल यदि' ... शब्दावली उपयुक्त है। 'वह पास होगा यदि और केवल यदि वह मेहनत करेगा' प्रतिज्ञप्ति तभी सत्य होगी जब इसकी घटक-प्रतिज्ञप्तियाँ 'वह पास होगा' तथा 'वह मेहनत करेगा' या तो दोनों सत्य हैं, या दोनों असत्य। परन्तु यदि पहली असत्य है और दूसरी सत्य, या पहली सत्य है और दूसरी असत्य तो यह प्रतिज्ञप्ति असत्य होगी। इस प्रतिज्ञप्ति का वही अर्थ है जोकि निम्नलिखित आपादक प्रतिज्ञप्तियों के संयोजन का— 'यदि वह मेहनत करेगा तो वह पास होगा,' तथा यदि वह पास होगा तो वह मेहनत करेगा।' इस प्रकार 'प≡फ' संयोजक फलन '(प⊃फ) · (प⊃फ)' का समानार्थक है। यदि हम एक-दूसरे फलन की सत्यता-तालिका बनावें तो हम देखेंगे कि वह प=फ की सत्यता-तालिका के समरूप है।

(प⊃फ)	·	(फ⊃प)
1	1	1
0	0	1
1	0	0
1	1	1

यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार आपादन की तार्किक परिणति कुछ विरोधाभासों का रूप लेती है उसी प्रकार सर्वसमिका की तार्किक कल्पना से भी कुछ विरोधाभास उत्पन्न होते हैं। और यह परिणाम अप्रत्याशित नहीं है, क्योंकि हम देख चुके हैं कि तार्किक सर्वसमिका की व्याख्या दो आपादनों के संयोजन द्वारा की जाती है। उदाहरण के लिए 'गाँधी अंग्रेज सन्त थे' प्रतिज्ञप्ति 'सब मनुष्य अमर हैं' के सर्वसम हैं, क्योंकि दोनों असत्य हैं। और 'गाँधी भारत के सन्त थे', 'पृथ्वी गोल है' सर्वसम है, क्योंकि दोनों सत्य हैं। वस्तुतः कोई भी सत्य प्रतिज्ञप्ति किसी भी दूसरी सत्य प्रतिज्ञप्ति या स्वयं के सर्वसम है; तथा कोई भी असत्य प्रतिज्ञप्ति किसी दूसरी असत्य प्रतिज्ञप्ति या स्वयं के सर्वसम है। इस कल्पना में जो विचित्रता प्रतीत होती

है वह इसलिए है कि साधारण भाषा में हम सर्वसमिका का यह अर्थ नहीं लगाते हैं, और प्रतिज्ञप्तियों में सर्वसमिका उनके साधारण अर्थ को देखकर मानते हैं। परन्तु तर्कशास्त्र में सर्वसमिका का निर्धारण केवल प्रतिज्ञप्ति के सत्यता मूल्य को देखकर किया जाता है। तर्कशास्त्र के इस प्रत्यय को साधारण भाषा के तद्विषयक प्रत्यय से पृथक् करने के लिए इसे 'वस्तुगत सर्वसमिका' की संज्ञा दी गई है।

2·53 असंगित

'आप कांग्रेस और जनसंघ दोनों को वोट नहीं दे सकते हैं' इस प्रतिज्ञप्ति में दो प्रतिज्ञप्तियाँ हैं—'आप कांग्रेस को वोट दे सकते हैं 'और' आप जनसंघ को वोट दे सकते हैं। इन दोनों प्रतिज्ञप्तियों का संयोजन का निषेध किया गया है। अर्थात् सरल प्रतिज्ञप्तियों में 'असंगति' का सम्बन्ध है। ऐसी प्रतिज्ञप्ति का तार्किक रूप है—

$$\sim(प \cdot फ)$$

इस तार्किक रूप को स्पष्ट करने के लिए हम उपर्युक्त प्रतिज्ञप्ति को लिख सकते हैं—

'यह असत्य है कि आप कांग्रेस को भी वोट दे सकते हैं और जनसंघ को भी।'

अथवा

'कांग्रेस को वोट देना जनसंघ को वोट देने से असंगत है।'

असंगति को प्रदर्शित करने वाली प्रतिज्ञप्तियों का प्रारूप होता है—

यह असत्य है कि............और............दोनों............।

............और............दोनों नहीं।

असंगति फलन की सत्यता-तालिका इस प्रकार है—

प	फ	(प · फ)	~(प · फ)
1	1	1	0
1	0	0	1
0	1	0	1
0	0	0	1

2·54 विकल्पन

पहले कहा जा चुका है कि 'या' शब्द के दो अर्थ होते हैं। 'या' के

समावेशक अर्थ का प्रतीक 'v' और व्यासवर्तक अर्थ का प्रतीक '∧' अथवा '⓪' माना गया है। पहले अर्थ वाले अचर की सत्यता-तालिका दी जा चुकी है। दूसरे अर्थ वाले अचर की सत्यता-तालिका इस प्रकार है—

प	फ	प ∧ फ
1	1	0
1	0	1
0	1	1
0	0	0

यही सत्यता-तालिका '[(प v फ) · ∼(प · फ)]' की भी है जैसा कि निम्नांकित सत्यता-तालिका से स्पष्ट है—

(प	v	फ)	·	∼	(प	·	फ)
1	1	1	0	0	1	1	1
1	1	0	1	1	1	0	0
0	1	1	1	1	0	0	1
0	0	0	0	1	0	0	0

इसके अतिरिक्त 'प · फ' की सत्यता-तालिका वही है जोकि '(प v फ) . (∼प v ∼फ) की, जैसाकि निम्नांकित सत्यता-तालिका से सिद्ध होता है—

(प	v	फ)	·	(∼प	v	∼	फ)
1	1	1	0	0	0		0
1	1	0	1	0	1		1
0	1	1	1	1	1		0
0	0	0	0	1	1		1

2·53 तिर्यक् रेखा

प्रारम्भ में चार तार्किक अचरों का परिचय दिया गया है। इन चारों के द्वारा ही '≡' तथा '∧' की व्याख्या की गई है। हमने यह भी देखा कि इन चारों में से निषेध के अचर '∼' तथा एक किसी अन्य अचर की सहायता से शेष दोनों अचरों की व्याख्या की जा सकती है अर्थात् हम कम से कम दो अचरों को मानकर चलते हैं। प्रश्न है कि क्या दो अचरों को मानकर चलना आवश्यक है? शेफर नामक तर्कशास्त्री ने इस प्रश्न का उत्तर केवल एक तार्किक अचर द्वारा अचरों की व्याख्या करके प्रस्तुत किया है। उसने अचर को 'तिर्यक्

रेखा' की संज्ञा दी है और उसका प्रतीक यह '/' माना है और उसकी परिभाषा इस प्रकार की है—'प/फ' को पढ़ा जाय कि 'प तथा फ में से कम से कम एक असत्य है'। इसकी सत्यता-तालिका निम्न प्रकार की है—

प	फ	प/फ
1	1	0
1	0	1
0	1	1
0	0	1

यह स्पष्ट है कि यह फलन '∼प या ∼फ' के समान है जैसाकि निम्नांकित सत्यता-तालिका से सिद्ध है—

प	फ	∼प	∼फ	∼प v ∼फ
1	1	0	0	0
1	0	0	1	1
0	1	1	0	1
0	0	1	1	1

जिन तार्किक अचरों को हम मूल मानकर चले थे उनकी व्याख्या उस तिर्यक् रेखा फलन द्वारा इस प्रकार होती है—

(क) ∼प≡प/प;

(ख) (प · फ)≡(प/फ)/(प/फ)

(ग) (प v फ)≡(प/प)/(फफ)

(घ) (प⊃फ)≡प/(फ/फ)। इसका प्रमाण सत्यता-तालिकाओं द्वारा नीचे दिया गया है—

(क)

प	∼प	≡	प	प	(प/प)
1	0		1	1	0
0	1		0	0	1

(ख) क्योंकि 'प/प'≡'प', इसलिए (प/फ)/(प/फ)≡'∼(प/फ)'। और चूंकि '(प/फ)' का अर्थ है कि 'प' और 'फ' में कम से कम एक असत्य है इसलिए '∼(प/फ)' का अर्थ है कि यह असत्य है कि 'प' और 'फ' में कम से कम एक असत्य है। अर्थात् दोनों 'प' और 'फ' असत्य हैं। सत्यता-तालिका से यह और भी स्पष्ट हो जाता है—

प	·	फ	≡	(प	/	फ)	/	(प	/	फ)
1	1	1		1	0	1	1	1	0	1
1	0	0		1	1	0	0	1	1	0
0	0	1		0	1	1	0	0	1	1
0	0	0		0	1	0	0	0	1	0

(ग) क्योंकि '(प/प)'≡'∼प' इसलिए '(प/प)/(प/फ)'≡'(∼प/∼फ)' जिसका अर्थ है कि या तो '∼प' या '∼फ' असत्य है। इसी का अर्थ यह भी है कि या 'प' या 'फ' सत्य है। निम्न तालिका से इसे स्पष्ट करती है—

प	∨	फ	≡	(प	/	प)	/	(फ	/	फ)
1	1	1		1	0	1	1	1	0	1
1	1	0		1	0	1	1	0	1	0
0	1	1		0	1	0	1	1	0	1
0	0	0		0	1	0	0	0	1	0

(घ) चूंकि '(फ/फ)'≡'∼फ' इसलिए 'प/(फ/फ)'≡'प/∼फ' जिसको हम पढ़ सकते हैं कि या तो 'प असत्य है या ∼फ' असत्य है अर्थात् या 'प' असत्य है या 'फ' सत्य है और यह तो हम जानते ही हैं कि '∼प ∨ फ' 'प ⊃ फ' के सर्वसम है। निम्नांकित सत्यता-तालिका इसे स्पष्ट करती है—

प	⊃	फ	≡	प	/	(फ	/	फ)
1	1	1		1	1	1	0	1
1	0	0		1	0	0	1	0
0	1	1		0	1	1	0	1
0	1	0		0	1	0	1	0

2·54 तेगा

तिर्यक् रेखा फलन के निषेध की भी कल्पना तर्कशास्त्रियों ने की है और उसको 'तेगा फलन' की संज्ञा दी है। इसका प्रतीक यह '↓' है। जब कि तिर्यक् रेखा फलन की परिभाषा है कि 'प तथा फ में से कम से कम एक असत्य है' तेगा फलन की परिभाषा है कि 'प तथा फ दोनों असत्य हैं।' इसलिए तेगा फलन की सत्यता-तालिका इस प्रकार बनती है—

प	फ	प ↓ फ
1	1	0
1	0	0
0	1	0
0	0	1

इस तेगा फलंन के माध्यम से भी प्रारम्भिक चारों अचरों की व्याख्या की जा सकती है वह व्याख्या इस प्रकार है—

(क) ∼ प = प ↓ प

(ख) प · फ = (प ↓ प) ↓ (फ ↓ फ)

(ग) प ∨ फ = (प ↓ फ) ↓ (प ↓ फ)

(घ) प ⊃ फ = [(प ↓ फ) ↓ फ)] ↓ [(प ↓ फ) ↓ फ)]

सम्बन्धित समानार्थी सत्यता-तालिकाएं इस प्रकार हैं—

(क)

प	∼प	≡	प	↓	प
1	0		1	0	1
0	1		0	1	0

(ख)

प	·	फ	≡	(प	↓	प)	↓	(फ	↓	फ)
1	1	1		1	0	1	1	1	0	1
1	0	0		1	0	1	0	0	1	0
0	0	1		0	1	0	0	1	0	1
0	0	0		0	1	0	0	0	1	0

(ग)

प	∨	फ	≡	(प	↓	फ)	↓	(प	↓	फ)
1	1	1		1	0	1	1	1	0	1
1	1	0		1	0	0	1	1	0	0
0	1	1		0	0	1	1	0	0	1
0	0	0		0	1	0	0	0	1	0

(घ)

प	⊃	फ	≡	[(प	↓	फ)	↓	फ]	↓	[फ	↓	(प	↓	फ)]
1	1	1		1	0	1	0	1	1	1	0	1	0	1
1	0	0		1	0	0	1	0	0	0	1	1	0	0
0	1	1		0	0	1	0	1	1	1	0	0	0	1
0	1	0		0	1	0	0	0	1	0	0	0	1	0

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि केवल एक तार्किक अचर की सहायता से प्रतिज्ञप्तियों के कलन के सभी सूत्र व्यक्त किए जा सकते हैं। परन्तु ऐसा करना अधिक लाभप्रद नहीं है, क्योंकि इस प्रकार अचरों की संख्या में तो बचत कर लेते हैं पर बौद्धिक स्पष्टता का उद्देश्य पराजित हो जाता है। उदाहरण के लिए '(∼प · फ) ⊃ फ)' अधिक आसानी से समझ में आ जाता है अपेक्षाकृत '{[(प/प)/फ)]/[(प/प)/फ)]}/(फ/फ)' के यद्यपि दोनों समान हैं, जैसाकि निम्न सत्यता-तालिकाओं से सिद्ध होता है। इसलिए प्रारम्भ में दिए हुए अचरों का प्रयोग ही वांछनीय है—

(∼ प · फ) ⊃ फ	≡	{[(प/प) / फ] /[(प/प) /फ]}/(फ/फ)
0 0 1 1 1		0 1 1 0 0 1 1 1 0
0 0 0 1 0		0 1 0 0 0 1 0 1 1
1 1 1 1 1		1 0 1 1 1 0 1 1 0
1 0 0 1 0		1 1 0 0 1 1 0 1 1

2·6 तार्किक विरामांकन

जब युक्तियों में दो से अधिक चरों का प्रयोग होता है तो उनको प्रतीकों द्वारा व्यक्त करने में कुछ विरामांकन के नियमों का पालन करना पड़ता है। चूंकि इन नियमों का सम्बन्ध तार्किक प्रतीकों के विरामांकन से हैं इसलिए इनके विवेचन को तार्किक विरामांकन की संज्ञा दी जाती है। इन नियमों के अभाव में प्रतीकों द्वारा व्यक्त की गई युक्ति अथवा तार्किक अभिव्यंजन का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। नीचे लिखी हुई प्रतिज्ञप्तियों पर विचार कीजिए—

(1) यह असत्य है कि वह महत्वाकांक्षी भी है और परिश्रमी भी।

(2) यदि वह महत्वाकांक्षी है तो उसको यदि कोई काम दिया जाएगा तो वह कर लेगा।

(3) या तो मन्त्रिमण्डल टूटेगा या उसमें विश्वास का प्रस्ताव पारित हो जायगा और मन्त्रिमण्डल के हाथ में सत्ता रहेगी।

यदि हम इन तीनों प्रतिज्ञप्तियों को प्रतीकात्मक भाषा में लिखें तो वह इस प्रकार होंगी—

(1′) ∼प · फ

(2′) प ⊃ फ ⊃ ब

(3′) प ∨ फ · ब

परन्तु यह प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ स्पष्टतः अपर्याप्त हैं, क्योंकि उनके अर्थ भ्रमात्मक हैं। (1) को हम पढ़ सकते हैं कि 'प असत्य है और फ सत्य' या 'यह असत्य है कि प और फ सत्य हैं।' (2) को हम पढ़ सकते हैं 'यदि प तो यदि फ तो ब 'या' यदि प तो फ तो ब। (3) को भी हम इसी प्रकार पढ़ सकते हैं—'या प या फ सत्य है' तथा ब सत्य है' अथवा 'प सत्य या फ तथा ब दोनों सत्य हैं।' इन तीनों प्रतिज्ञप्तियों के पृथक् पाठों में से कौनसा पाठ सही है यह बिना मूल प्रतिज्ञप्तियों (1), (2), (3) को जाने हुए निश्चित नहीं किया जा सकता। इसलिए प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति में विरामांकन की आवश्यकता पड़ती है।

2·61 अचरों का आधिपत्य

विरामांकन के नियम 'अचर के आधिपत्य' के प्रत्यय को समझकर बताए जा सकते हैं। अचर के आधिपत्य से तात्पर्य किसी सत्यता फलन के सूत्र के उन भागों से है जोकि उस अचर के अधीन होते हैं। प्रतिज्ञप्ति (1) को हम '∼(प · फ)' द्वारा प्रतीकृत कर सकते हैं, क्योंकि यहाँ पर '∼' चिह्न का आधिपत्य शेष पूरे '(प · फ)' फलन पर है। इसके विपरीत 'वह महत्वाकांक्षी नहीं है, परन्तु परिश्रमी है' का रूपान्तर होगा '∼ प · फ' क्योंकि यहाँ पर '∼' का आधिपत्य केवल 'प' तक सीमित है।

निषेध '∼' केवल उस सूत्र या सूत्र के भाग को जो उसका अनुवर्ती है, नियन्त्रित करता है। शेष अचर जिनका परिचय दिया जा चुका है किसी सूत्र या सूत्र के भाग जोकि उनके पूर्ववर्ती और अनुवर्ती हैं, दोनों को नियन्त्रित करते हैं। उदाहरण के लिए 'प ∨ फ' में '∨' का आधिपत्य 'प' और 'फ' दोनों पर है। और 'प ∨ (फ · ब)' में '∨' का आधिपत्य 'प' तथा (फ · ब)' दोनों पर है। इसलिए इन अचरों को द्विसम्बन्धी, द्विआधारीय या द्विआश्रयी कहते हैं।

अचरों के आधिपत्य को ठीक प्रकार से बताने के लिए कोष्ठकों का प्रयोग आवश्यक है। कोष्ठकों के प्रयोग के लिए निम्नलिखित नियम पर्याप्त हैं–

नियम 1. '∼' का आधिपत्य उसके तुरन्त बाद आने वाले प्रतिज्ञप्ति चर तक सीमित है। '∼' के तुरन्त बाद वामवर्ती कोष्ठक के आने की स्थिति में उसका आधिपत्य पूरक दक्षिणवर्ती कोष्ठक तक होता है। उदाहरणार्थ '∼ प · फ' में '∼' का आधिपत्य 'प' तक है, परन्तु '∼[प · (फ ⊃ ब) ∨ भ' में '∼' का आधिपत्य सारे सूत्र पर है और '∼ (प · फ) ∨ (ब ⊃ भ)' में '∼' का आधिपत्य '(प · फ)' तक ही है।

नियम 2. यदि एक द्विआधारीय अचर के एक ओर एक प्रतिज्ञप्तीय चर है तो उस अचर का आधिपत्य उस ओर प्रतिज्ञप्तीय चर तक ही सीमित है। यदि एक द्विआधारीय अचर के एक ओर एक कोष्ठक है तो उस अचर का आधिपत्य जहाँ वह कोष्ठक समाप्त होगा, वहाँ तक होगा।

उदाहरणार्थ—'प ⊃ (फ ∨ ब)' में '⊃' का आधिपत्य '(फ ∨ ब)' पर है परन्तु '[(प ⊃ फ) ⊃ ब] ⊃ [(ब ⊃ प) ⊃ (भप)]' में पहले आपादन का आधिपत्य 'प' तथा 'फ' पर है। दूसरे '⊃' का '(प ⊃ फ)' तथा 'ब' पर है और तीसरे का पूरे सूत्र के दोनों भागों पर। चौथे का 'ब' तथा 'प' पर है और पाँचवें का '(ब ⊃ प)' तथा '(भ ⊃ प)' और छठे का 'भ' तथा 'प' पर।

2·7 सत्यता-फलन सूत्रों का वर्गीकरण

किसी भी सत्यता-फलन सूत्र को सत्यता-तालिका के आधार पर तीन वर्गों में रखा जा सकता है। अर्थात् उनकी तीन प्रकार की ढाँचा-संख्याएँ हो सकती हैं। यदि ढाँचा संख्या (अर्थात् सत्यता-तालिका के मुख्य स्तम्भ में अंकों के क्रम) में केवल '1' ही पाए जाते हैं तो वह सूत्र 'तर्कसिद्ध' या 'पुनरुक्ति' है। यदि ढाँचा-संख्या में केवल '0' पाए जाते हैं तो वह सूत्र 'तर्क-असिद्ध' या 'व्याघात' है और यदि किसी सूत्र के मुख्य स्तम्भ में '1' तथा '0' दोनों मिलते हैं तो वह सूत्र 'आपातिक' है तथा उसकी सत्यता असत्यता चरों के सत्यता मूल्य के संगठन विशेष पर निर्भर है। निम्नलिखित तीन सूत्र क्रमशः पुनरुक्ति, व्याघात एवं आपातिक के उदाहरण है—

(क) पुनरुक्ति

(प	⊃	फ)	≡	(~	फ	⊃	~	प)
1	1	1	1	0	1	1	0	1
1	0	0	1	1	0	0	0	1
0	1	1	1	0	1	1	1	0
0	1	0	1	1	0	1	1	0

(ख) व्याघात

(प	⊃	फ)	·	(प	·	~	फ)
1	1	1	0	1	0	0	1
1	0	0	0	1	1	1	0
0	1	1	0	0	0	0	1
0	1	0	0	0	0	1	0

(ग) आपातिक

(प	⊃	फ)	≡	(~	प	⊃	~	फ)
1	1	1	1	0	1	1	0	1
1	0	0	0	0	1	1	1	0
0	1	1	0	1	0	0	0	1
0	1	0	1	1	0	1	1	0

ऊपर दी गई सत्यता-तालिकाओं से दो निष्कर्ष निकलते हैं—

(1) प्रत्येक तर्क-असिद्ध सूत्र प्रत्येक तर्क-सिद्ध सूत्र का निषेध है और प्रत्येक तर्क-सिद्ध सूत्र का निषेध तर्क-असिद्ध सूत्र है।

(2) प्रत्येक तर्क-सिद्ध सूत्र दूसरे तर्क-सिद्ध सूत्रों के समान हैं और इसी प्रकार प्रत्येक तर्क-असिद्ध सूत्र अन्य तर्क-असिद्ध सूत्रो के समान हैं।

2·71 पुनरुक्तियों की सूची

यहाँ पर प्रमुख पुनरुक्तियों की सूची बना लेना लाभ-प्रद है, क्योंकि इनका प्रयोग तर्कशास्त्र में बारम्बार होता है। इन पुनरुक्तियों को कभी-कभी 'तर्कशास्त्र के नियम' और 'संदर्भ सूत्र' भी कहा जाता है। इनकी सूची निम्नलिखित है। सूची में पुनरुक्तियों का वर्गीकरण सम्बन्धित अक्षरों के आधार पर किया गया है।

एक प्रतिज्ञप्ति से सम्बन्धित

1·1 प ≡ प
1·2 (प v प) ≡ प
1·3 (प · प) ≡ प — सर्वसमिका का नियम

1·4 ∼∼प ≡ प — द्विनेषध का नियम

1·5 प v ∼प — मध्याभाव का नियम

1·6 ∼(प · ∼प) — व्याघात का नियम

1·7 (प ⊃ ∼प) ≡ ∼प — बाधितार्थ का नियम

योजन :

2·1 (प · फ) ≡ (फ · ब) — 'और' के क्रमविनिमेयता का नियम

2·2 [प · (फ · ब)] ≡ [(प · फ) · ब]
≡ (प · फ · ब) — 'और' की सहचारिता का नियम

नियोजन :

3·1 (प v फ) ≡ (फ v प) — 'या' के क्रम विनिमेयता का नियम

3·2 [प v (फ v ब)] ≡ [(प v फ) v ब]
≡ [(प v फ v ब) — 'या' की सहचारिता का नियम

संयोजन तथा वियोजन :

4·1 [प · (फ v ब)] ≡ [(प · फ) v (प · ब)] — वितरण का प्रथम नियम

4·2 [प v (फ · ब)] ≡ [(प v फ) · (प v ब)] — वितरण का द्वितीय नियम

4·3 $[(प \vee फ) \cdot (ब \vee भ)] \equiv [(प \cdot ब) \vee (फ \cdot ब) \vee (प \cdot भ) \vee (फ \cdot भ)]$ — द्विवितरण का प्रथम नियम

4·4 $[(प \cdot फ) \vee (ब \cdot भ)] \equiv [(प \vee ब) \cdot (फ \vee ब) \cdot (प \vee भ) \cdot (फ \vee भ)]$ — द्विवितरण का द्वितीय नियम

4·5 $[प \cdot (प \vee फ) \equiv [प \vee (प \cdot फ)] \equiv प$ — पदाधिक्य का नियम

निषेध संयोजन तथा वियोजन :

5·1 $\sim(प \cdot फ) \equiv (\sim प \vee \sim फ)$

5·2 $\sim(प \vee फ) \equiv (\sim प \cdot \sim फ)$ — निषेध रेखा का भंग करना

5·3 $[प \cdot (फ \vee \sim फ)] \equiv प$ — सदैव सत्य कारक का पातन

5·4 $[प \vee (फ \cdot \sim फ)] \equiv प$ — सदैव असत्य कारण का पातन

5·5 $[प \vee (\sim प \cdot फ)] \equiv (प \vee फ)$ — निषेध का अतिरेक

आपादन, निषेध, संयोजन तथा वियोजन :

6·1 $(प \supset फ) \equiv (\sim प \vee फ)$

6·2 $(प \supset फ) \equiv (प \cdot \sim फ)$ — आपादन का विलयन

6·3 $(प \supset फ) \equiv (\sim फ \supset \sim प)$ — प्रतिवर्तन

6·4 $[प \supset (फ \supset ब)] \equiv [फ \supset (प \supset ब)] \equiv [(प \cdot फ) \supset ब]$ — आधार वाक्य की समिति

6·5 $[(प \supset फ) \cdot (प \supset ब)] \equiv [प \supset (फ \cdot ब)]$

6·6 $[(प \cdot फ) \cdot (प \supset ब)] \equiv [(प \vee फ) \supset ब]$

6·7 $[(प \supset फ) \vee (प \supset ब)] \equiv [(प \supset फ) \vee ब]$

6·8 $[(प \supset ब) \vee (फ \supset ब)] \equiv [(प \cdot फ) \supset ब]$ — आपादनों का संविलय

सर्वसमता, आपादन, निषेध, संयोजन, तथा वियोजन :

7·1 $(प \equiv फ) \equiv [(प \supset फ) \cdot (फ \supset प)]$

7·2 $(प \equiv फ) \equiv [(प \cdot फ) \vee (\sim प \cdot \sim फ)]$ — सर्वसमता का संविलय

7·3 $\sim(प \equiv फ) \equiv (प \equiv \sim फ)$ — सर्वसमता का निषेध

7·4 $(प \equiv फ) \equiv (\sim प \equiv \sim फ)$ — सर्वसम पदों का निषेव

एकाङ्गी आपादन :

8·1 $प \supset (प \vee फ)$ — स्वेच्छारी पद का संकलन

8·2 $(प \cdot फ) \supset प$ — सरलीकरण का नियम

8·3 $प \supset (फ \supset प)$

8·4 $\sim प \supset (प \supset फ)$ — आपादन का स्वेच्छारी संकलन

8·5 $[प \cdot (प \supset फ)] \supset फ$ — अनुमानिक आपादन

8·6 $(प \supset फ) \supset [(प \supset फ) \vee ब)]$ — आपाद्य में एक पद का संकलन

8·7	(प ⊃ फ) ⊃ [(प · ब) ⊃ फ)]	आपादक में एक कारक का संकलन
8·8	[(प ∨ ब) ⊃ फ] ⊃ (प ⊃ फ)	आपादक से एक पद का संविलय
8·9	[प ⊃ (फ · ब)] ⊃ (प ⊃ फ)	आपाद्य से एक पद का संविलय
8·10	[(प ⊃ फ) · (ब ⊃ भ)] ⊃ [प ∨ ब) ⊃ (फ ∨ भ)]	संविलीन आपादन की व्युत्पत्ति
8·11	[(प ⊃ फ) · (ब ⊃ भ)] ⊃ [(प · ब) ⊃ (फ · भ)]	संविलीन आपादन की व्युत्पत्ति
8·12	[(प ⊃ फ) · (फ ⊃ ब)] ⊃ (प ⊃ ब)	आपादन की संचारिता
8·13	[(प ≡ फ) · (फ ≡ ब)] ⊃ (प ≡ ब)	सर्वसमता की संचारिता
8·14	[(प ⊃ फ) · ∼फ] ⊃ ∼प	निषेधात्मक हेतुफलानुमान
8·15	[(प ⊃ फ) · प] ⊃ फ	विधायकात्मक हेतुफलानुमान
8·16	[(प ∨ फ) · ∼प] ⊃ फ	वियोजक न्यायवाक्य का नियम

2·8 प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में अरस्तू के विरोध चतुस्र का अर्थ

1. प्रतिकूलता : ए और ओ तथा ई और आई प्रतिज्ञप्तियों में व्याघात का सम्बन्ध है, अर्थात् यदि एक सत्य है तो दूसरी असत्य। इस सम्बन्ध को प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में व्यावर्तक वियोजन या विकल्पन बताया गया है और इस सम्बन्ध को हम इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं :

ए ∧ ओ   ए ⓥ ओ

ई ∧ आई   ई ⓥ आई

2. विपरीतता : ए तथा ई प्रतिज्ञप्तियों का सम्बन्ध विपरीतता का है। विपरीत कथन एक साथ सत्य नहीं हो सकते, यद्यपि दोनों एक साथ असत्य हो सकते हैं। यदि क्षण-भर के लिए हम 'विपरीत है' के लिए 'वि' का प्रयोग करें तो ए और ई की सत्यता-तालिका इस प्रकार होगी :

ए	वि	ई
1	0	1
1	1	0
0	1	1
0	1	0

यह ए—ई' का निषेध है। इसलिए इसको प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में '∼(ए · ई)' परिभाषित किया जा सकता है।

3. उपविपरीतता : ई और ओ वाक्यों में उपविपरीतता का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में समावेशक वियोजन कहते हैं। इसकी परिभाषा हुई 0 'आई v ओ'।

4. अध्यापादन : यदि ए सत्य है तो उसका अनुरूप आई भी सत्य है। परन्तु यदि ए असत्य है तो उसका अनुरूप आई सत्य या असत्य हो सकता है। यह प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र का परिचित आपादन सम्बन्ध है। अतः हम कर सकते हैं 'ए ⊃ आई', 'ई ⊃ ओ'।

5. उप-आपादन : यह सम्बन्ध आई और ए तथा ओ और ई, के नीचे पाया जाता है। इस सम्बन्ध के अनुसार यदि पहला वाक्य सत्य है तो दूसरा सत्य या असत्य दोनों ही हो सकता है। पर यदि पहला असत्य तो दूसरा भी असत्य होगा। इसकी सत्यता-तालिका इस प्रकार बनेगी :

आई	⊃अ	ए
ओ	⊃अ	ई
1	1	1
1	1	0
0	0	1
0	1	0

उपर्युक्त सत्यता-तालिका '∼(∼आई · ए)' और '∼(∼ओ · ई)' की है। अतः उप-आपादन की यही परिभाषा प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में है।

अरस्तू के तर्कशास्त्र में प्रतिपादित परोक्षानुमान के पाँच सम्बन्धों में से चार प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में मान्य हैं। पाँचवाँ—अधिआपादन के सम्बन्ध को प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र अवैध मानता है। कारण यह है कि अधिआपादन का सम्बन्ध तभी सत्य है जबकि सम्बन्धित वस्तुओं का अस्तित्व हो। प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में सम्बन्धों के विवेचन में सम्बन्धित वस्तुओं के अस्तित्त्व का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता। सम्बन्ध की सत्यता अथवा असत्यता पर कोई अन्तर नहीं पड़ता यदि सम्बन्धित वस्तुओं का पूर्ण अस्तित्त्व न हो।

अन्त में हम अरस्तू के परीक्षानुमानों को निम्नलिखित तालिका-रूप में संक्षेपण करें। तालिका में आधार वाक्य की सत्यता 'स' अक्षर से प्रयोग द्वारा बताई गई है और असत्यता 'अ' अक्षर के प्रयोग से। तालिका की प्रत्येक लाइन बताती है कि आधार वाक्य के सत्य या असत्य होने पर बाकी वाक्यों का सत्यता मूल्य 1 या 0 में से क्या होगा। जहाँ सत्यता-मूल्य अनिश्चित है

वहाँ प्रश्नचिह्न '?' का प्रयोग किया गया है। 'अनिश्चित' कोई तीसरा सत्यता मूल्य नहीं है। उसका अर्थ केवल यह है कि मूल्य सत्य या असत्य दो में से कोई भी हो सकता है।

ए	ई	आई	ओ
स	0	1	0
0	स	0	0
?	0	स	?
0	0	?	स
अ	?	?	1
?	अ	1	?
0	1	अ	1
1	0	1	अ

2·9 सत्यता फलन सूत्रों की कुल संख्या

जब हम किसी सत्यता फलनसूत्र की सत्यता-तालिका का निर्माण करते हैं तो उसकी विशिष्ट ढांचा संख्या भी निश्चित हो जाती है। उदाहरण के लिए 'प v फ' की ढाँचा-संख्या 1110 और 'प · (फ V ब)' की 11100000 है। हम यह भी देख चुके हैं कि जो भी सूत्र अभिन्न होते हैं उनकी ढाँचा-संख्या एक ही होती है। सब पुनरुक्तियों की कुल संख्या, यदि वह दो चरों का फल है, तो 1111 और यदि तीन चरों का तो 11111111 होती है आदि-आदि। प्रश्न है कि विभिन्न सत्यता फलनों की कुल संख्या क्या है?

इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर है कि हम कितने प्रतिज्ञप्तीय चरों का सूत्र लेते हैं। यदि चरों की संख्या निश्चित कर दी जाय तो प्रश्न का उत्तर निश्चित रूप से दिया जा सकता है और उत्तर यह है कि विभिन्न सत्यता फलन सूत्रों की संख्या उतनी ही होगी जितनी विभिन्न प्रकार की ढाँचा-संख्याएँ हैं। यदि प्रतिज्ञप्तीय चर एक है तो इसकी चार ढांचा-संख्याएँ सम्भव हैं—'11,10,01,00' इन संख्याओं के क्रमशः सूत्र हैं:—'प V ∼प'; 'प∼प'; 'प · ∼प'।

दो चरों वाले सत्यता फलन सूत्रों के लिए चार अंक वाली ढांचा-संख्याओं की आवश्यकता होती है। इसलिए 'प' तथा 'फ' से निर्मित असमान सूत्रों की संख्या वही होगी जोकि चार अंकों में 1 और 0 को विभिन्न क्रमों से भरने की संख्या होगी। यह क्रम 2^4 यानी 16 होंगे क्योंकि पहले चर को

भरने के दो प्रकार (सत्य-असत्य) हैं और दूसरे चर के भी भरने के भी दो प्रकार हैं।

इसी प्रकार तीन चरों के 2^8 अर्थात् 256 असमान सूत्र सम्भव हैं तथा चार चरों के लिए 2^{16} या 65336 असमान सूत्र होंगे। हम देखते हैं कि 2 के घात 2^2, 2^4, 2^8, 2^{16} आदि स्वयं भी क्रमशः दो के ही घात हैं जैसे—2^1, 2^2, 2^3 आदि। अतः असमान सत्यता सूत्रों की संख्या को निम्नलिखित नियम से निर्धारित किया जा सकता है—

एक चर के 2^{2^1} अर्थात् 2^4 अर्थात् 16 असमान फलन होते हैं। तीन चरों के 2^{2^3} अर्थात् 2^8 अर्थात् 256 असमान फलन होते हैं। और 'न' चरों के $2^{2^{न}}$ असमान फलन होंगे। उदाहरण के लिए दो चरों के असमान फलन निम्नांकित सोलह होंगे :

कुलक 1	कुलक 2	कुलक 3	कुलक 4
1111	1111	0000	0000
1111	0000	1111	0000
1100	1100	1100	1100
1010	1010	1010	1010

इनमें से जिन का नामकरण व विवेचन हो चुका है, वह हैं—1111 पुनरुक्ति 0000 व्याघात, 1110 वियोजन, 1000 संयोजन, 1011 आपादन, 1101 प्रत्यापादन, 1001 सर्वसमिका, 0110 विकल्पन, 0111 तिर्यक् रेखा, 0001 तेगा।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियों को प्रतीकृत कीजिये। अवयवी प्रतिज्ञप्तियों के लिए प्रतिज्ञप्तीय चरों का प्रयोग कीजिये। जिन प्रतिज्ञप्तियों के लिए प्रतीक का प्रयोग किया गया है उनको लिखना मत भूलिए।

उदाहरण : अतिथि ने पानी पिया पर भोजन नहीं किया ।
मानिए 'प' प्रतीक है 'अतिथि ने पानी पिया' और 'फ' प्रतीक है अतिथि ने भोजन किया' के लिए तो प्रतिज्ञप्ति का प्रतीकृत रूप हुआ—'प · ∼फ' ।

1. परीक्षार्थियों को परीक्षाभवन में बोलने या नकल करने की मनादी है ।
2. प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र न शुष्क है न अनावश्यक ।
3. मैं आया; मैंने देखा; मैंने जीता ।
4. इस शर्त पर कि आप न बताएँ, मैं आपको बताऊँगा ।
5. आपकी गाड़ी छूट जाएगी यदि आप जल्दी नहीं करेंगे ।
6. यदि क ख के पूर्व नहीं है तो क ख का कारण नहीं है ।
7. यदि और केवल यदि आप तर्कशास्त्र में काफी मेहनत करेंगे, आपको उससे कुछ अधिक प्राप्ति नहीं होगी ।
8. यदि और केवल यदि कर्म कर्त्तव्य की भावना से किया जाता है, तो उसका नैतिक मूल्य होता है ।
9. जबतक कि रोगी परहेज नहीं करेगा, उसका अच्छा होना कठिन है ।
10. या तो आप पास होंगे या फेल ।
11. इस सौदे से हम दो में से किसी एक का लाभ होगा ।
12. सेठ करोड़ीमल या उनकी पत्नी अपने संयुक्त खाते से रुपया निकाल सकते हैं ।
13. न इसने न उसने एक भी झपकी ली है ।
14. मोटर बगैर पैट्रोल के नहीं चल सकती ।
15. स्पिनोजा ने कहा है कि सर्वोत्तम शुभ की खोज असम्भव है जबकि साथ में हम अपनी साधारण कामनाओं की पूर्ति करते रहते हैं ।

(ख) क्या निम्नलिखित युगल वाक्यों का अर्थ एक-सा है ? प्रतीकृत करके बताइए कि क्यों या क्यों नही है ।

1. वह अच्छा आदमी है । यह असत्य है कि वह अच्छा आदमी है ।
2. वह सुन्दर परन्तु गूंगी है । वह गूंगी परन्तु सुन्दर है ।
3. दिल्ली लखनऊ से पश्चिम है । यह असत्य है कि लखनऊ दिल्ली के पश्चिम में नहीं है ।

4. उसने चिट्ठी दे दी पर संदेश देना भूल गया। वह संदेश देना भूल गया पर चिट्ठी दे दी।
5. वह सिनेमा नहीं गया पर घर पर भी पढ़ाई नहीं की। उसने घर पर पढ़ाई की पर सिनेमा नहीं गया।

(ग) विशिष्ट प्रतीक द्वारा निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियों को प्रतीकृत कीजिए और उनके तीनों समान रूप दीजिए। पुनः तीनों समान रूपों को शब्दों में लिखिए जैसा की उदाहरण में दिखाया गया है—

उदाहरण—यदि वह भाग्यवान नहीं है तो वह हार जायगा।

'वह भाग्यवान है' के लिए 'प' प्रतीक मानिए।

'वह हार जायगा' के लिए 'फ' प्रतीक मानिए।

तो प्रतिकृतरूप हुआ : $\sim$प $\supset$ फ

$\equiv$ प $\vee$ फ। या वह भाग्यवान है या वह हार जायगा।

$\equiv$ $\sim$($\sim$प.$\sim$फ)। यह असत्य है कि वह भाग्यवान नहीं है तथा वह हार नहीं जाएगा।

$\equiv$ $\sim$फ $\supset$ प। यदि वह हारता नहीं है, तो वह भाग्यवान है।

1. वह लखनऊ और हैदराबाद दोनों जगह एक साथ नहीं हो सकता।
2. केवल यदि वह बंगाली जानता तो बंगलादेश में छात्रवृत्ति पा सकता है।
3. या तो आप पूछें या आपको पता नहीं लगेगा।
4. आदमी अच्छा काम करे और खाने को न मिले ऐसा नहीं हो सकता।
5. यदि आप उसको जान जाएंगे तो उसको पसन्द करेंगे।
6. जबतक जल्दी नहीं करेंगे, आप को गाड़ी नहीं मिलेगी।

3

प्रतिज्ञप्तियों का न्याय : युक्ति-परीक्षण

3·01 सत्यता-तालिका की रचना

सत्यता-तालिका रचना के नियमों को हम इस प्रकार समझ सकते हैं। पहले हम ऐसा सत्यता-फलन लें जिसमें केवल एक ही चर है। ऐसा सत्यता फलन '∼प' है। इसकी सत्यता-तालिका में दो पंक्तियाँ और दो स्तम्भ होते हैं। क्योंकि 'प' के केवल दो सत्यता मूल्य हैं और इसलिए '∼प' के भी दो ही मूल्य हैं। सत्यता-तालिका के पहले स्तम्भ में 'प' के मूल्य दिए जाते हैं और दूसरे में '∼प' के, इस प्रकार—

प	∼प
1	0
0	1

अब हम ऐसा सत्यता फलन लें जिसमें दो चर हैं जैसे 'प ∨ फ'। इसकी सत्यता-तालिका में चार पंक्तियाँ और तीन स्तम्भ होंगे। क्योंकि 'प' के दो मूल्य हैं और 'फ' के भी दो मूल्य हैं और दोनों के मूल्य चार प्रकार से लिखे जा सकते हैं— 11, 10, 01 तथा 00। अर्थात् जब एक चर हो तो सत्यता मूल्य 1, 0 के क्रम में लिखा जा सकता है और जब दो चर हों तो पहले चर का मूल्य 1, 1, 0, 0 और दूसरे का 1, 0, 1, 0 के क्रम में लिखा जा सकता है। अब मान लीजिए कि हमें एक ऐसे सत्यता फलन की सत्यता-तालिका बनाना है जिसमें तीन चर आते हैं जैसे '(प ∨ ब) ⊃ (फ ∨ ब)'।

हम देख चुके हैं कि एक चर की सत्यता सम्भावनाएं 2^1 या 2 होती हैं और दो चर की 2^2 या 4 होती हैं। इसलिए तीन चरों की सत्यता सम्भावनाएं 2^3 या 8 होंगी और इसलिए हमें सत्यता-तालिका में आठ पंक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी।

अब हमें यह तय करना होगा कि इन आठ पंक्तियों में '1' व '0' को किस क्रम में रखा जाय। यह क्रम कई प्रकार का हो सकता है, परन्तु निम्नांकित क्रम सुविधाजनक और प्रचलित है तथा हम इसी का प्रयोग बराबर करेंगे।

प	फ	ब
1	1	1
1	1	0
1	0	1
1	0	0
0	1	1
0	1	0
0	0	1
0	0	0

उपर्युक्त विवेचन का सारांश नीचे लिखे दो नियमों के रूप में दिया जा सकता है—

(1) यदि हम अनिश्चित संख्या के लिए 'न' अक्षर का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि 'न' चरों वाले सत्यता फलन की समस्त सत्यता सम्भावनाओं को बताने के लिए हमें $2^{न}$ पंक्तियों की आवश्यकता होगी।

(2) प्रत्येक चर के सत्यता-मूल्य का स्तम्भों में क्रम इस प्रकार होगा—

जहां 'न' चरों की संख्या का योग है वहाँ 'घ-यीय' चर में $2^{घ-1}$ कुलक होंगे जिन में $2^{न-घ}1$ होंगे और उस के बाद $2^{न-घ}0$ होंगे। इन नियमों को नीचे के दृष्टान्तों से समझा जा सकता है।

दृष्टान्त 1—मान लीजिए एक फलन में दो चर हैं तो (क) पंक्तियों की संख्या 2^2 यानी चार होंगी (ख) पहले चर का स्तम्भ 2^{1-1} या 2^0 अर्थात् 2^{2-1} का एक कुलक, यानी दो '1' और उसके बाद उतने ही 0 यथा 1100 होगा।

दृष्टान्त 2—मान लीजिए कि एक फलन में चार चर हैं। तो (क) सत्यता-तालिका में 2^4 या 16 पंक्तियां होंगी। (ख) यदि हम तीसरे चर का

स्तम्भ बनावें तो हमें उस में 2^{3-1} या चार कुलक बनाने होंगे और 2^{4-3} या 2 बार 1 के बाद उतनी ही संख्या 0 शून्य की देनी होगी। इस प्रकार—

1100, 1100, 1100, 1100.

दृष्टान्त 3—मान लीजिए कि किसी फलन में पाँच चर हैं तो (क) सत्यता-तालिका में 2^5 या 32 पंक्तियाँ होंगी। (ख) यदि हम तीसरे चर का स्तम्भ बनाना चाहते हैं तो हमें 2^{3-1} यानी 4 लगातार (1) होंगे और उस के बाद उतने ही 0 इस प्रकार होंगे—11110000, 11110000, 1111-0000, 11110000,11110000

उपर्युक्त दृष्टान्तों से यह विदित है कि जिस सत्यता फलन में चार या पाँच से अधिक चर होते हैं उनकी सत्यता-तालिका बनाना अव्यावहारिक तथा दुःसाध्य है।

3·02 सत्यता-तालिका के उपयोग

सत्यता-तालिकाओं की परिभाषा की युक्तियों की वैधता का परीक्षण करने की एक यंत्रवत विधि प्रदान करती हैं। कोई भी वैध युक्ति हर सम्भावित दशा में अनिवार्यतः सत्य होती है। चूंकि सत्यता-तालिका प्रत्येक सम्भव दशा का प्रदर्शन करती है, अर्थात् प्रत्येक संहति का सत्यता-मूल्य बताती है, हमें आशा करनी चाहिए कि किसी वैध युक्ति की सत्यता-तालिका के मुख्य कालम में केवल सत्यता मूल्य '1' ही मिलेंगे। यथा

प (1)	फ (2)	(प ⊃ फ) (3)	(प ⊃ फ) · प (4)	[(प ⊃ फ) · प] ⊃ फ (5)
1	1	1	1	1
1	0	0	0	1
0	1	1	0	1
0	0	1	0	1

किसी युक्ति की अवैधता मुख्य कालम में एक भी असत्यता मूल्य '0' के वर्तमान होने से प्रमाणित होती है। यथा

प (1)	फ (2)	(प ⊃ फ) (3)	∼प (4)	(प ⊃ फ) · ∼प (5)	∼फ (6)	[(प ⊃ फ) · ∼प] ⊃ फ (7)
1	1	1	0	0	0	1
1	0	0	0	0	1	1
0	1	1	1	1	0	0
0	0	0	1	1	1	

अन्तिम कालम की तीसरी पंक्ति में '0' आ जाने के वाद हमें आगे वढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि युक्ति अवैध सिद्ध हो चुकी है।

सत्यता-तालिका का विधि उपयोग युक्तियों की वैधता परीक्षण के लिए अधिक प्रचलित है। परन्तु इसका उपयोग सर्वसमिका के परीक्षण के लिए भी कया जा सकता है। मान लीजिए कि हमें निश्चय करना है कि आपादन का सम्बन्ध वस्तुत: आपादक की सत्यता और आपाद्य की असत्यता का निषेध है। दोनों की सर्वसमिका का परीक्षण इस प्रकार किया जा सकता है। परीक्षण करने वाली सर्वसमिका है—'(प⊃फ) ≡ ∼(प · ∼फ)' इसकी सत्यता-तालिका में सर्वसमिका कालम में केवल '1' पाए जाते हैं। अतः सर्वसमिका सिद्ध है।

प (1)	फ (2)	(प⊃फ) (3)	∼फ (4)	प ·∼फ (5)	∼(प·∼फ) (6)	(प⊃फ)≡∼(प·∼फ) (7)
1	1	1	0	0	1	1
1	0	0	1	1	0	1
0	1	1	0	0	1	1
0	0	1	1	0	1	1

सत्यता-तालिका विधि का उपयोग संगति के परीक्षण के लिए भी यदा-कदा किया जाता है। संगति का अर्थ है स्व-संगति या अवाधता। प्रतिज्ञप्तियों का कोई कुलक संगत है यदि वह सम्भवतः सत्य है और असंगत है यदि वह अनिवार्यतः असत्य है। किसी व्यंजक की सम्भावित सत्यता का प्रमाण है कि कम से कम एक सत्यतामूल्य '1' उसकी सत्यता-तालिका के अन्तिम कालम में पाया जाता है, और उसकी असंगति का प्रमाण है कि उसकी सत्यता-तालिका के अन्तिम कालम में केवल '0' पाए जाते हैं। निम्नलिखित सत्यता-तालिका को देखिए—

प (1)	∼प (2)	प V ∼प (3)	∼(पV∼ प) (4)	प · ∼प (5)
1	0	1	0	0
0	1	1	0	0

हम इस तालिका का यह अर्थ लगा सकते हैं कि प्रतिज्ञप्ति 'प' स्वयं में अथवा उसका निषेध '∼प' अवैध परन्तु संगत है, क्योंकि यह सत्य या असत्य हो सकती है। परन्तु यह कहना कि कोई प्रतिज्ञप्ति सत्य या असत्य '(पV∼प)'

हो सकती है, वैध है। परन्तु इस कथन का निषेध '∼(प v∼प)' असंगत है। और किसी प्रतिज्ञप्ति और उसके निषेध का संयोजन 'प · ∼प' असंगत है।

असंगति परीक्षण आधार वाक्यों और निष्कर्ष की संगति के अलग-अलग जाँच में अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि आधार वाक्यों का कोई समूह वैध तर्क द्वारा असंगत निष्कर्ष प्रतिपादित करता है तो हमें पूर्ण विश्वास हो सकता है कि कम से कम एक आधार वाक्य असत्य है, क्योंकि कोई भी युक्ति जिसके आधार वाक्य सत्य है, अनिवार्यतः सत्य निष्कर्ष प्रतिपादित करती है।

असंगति परीक्षण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

प (1)	फ (2)	∼फ (3)	फ ·∼फ (4)	प ⊃(फ ·∼फ) (5)	∼प (6)	[प ⊃(फ·∼फ)] ⊃ ∼प (7)
1	1	0	0	0	0	1
1	0	1	0	0	0	1
0	1	0	0	1	1	1
0	0	1	0	1	1	1

अर्थात् किसी प्रतिज्ञप्ति 'प' से यदि असंगत निष्कर्ष 'फ · ∼फ' निकलता है तो सिद्ध है कि आधार वाक्य 'प' असत्य है।

असंगत आधार वाक्यों के बारे में हम जानते हैं कि यदि आधार वाक्य सत्य नहीं है तो वैध युक्ति के निष्कर्ष का सत्य होना अनिवार्य नहीं है। इसलिए किसी भी युक्ति का तुरन्त त्याग किया जा सकता है जिसके आधार वाक्य असंगत हैं। निम्न सत्यता-तालिका प्रदर्शित करती है कि किसी भी आधार वाक्यों के कुलक में व्याघाती प्रतिज्ञप्तिओं के योग का वर्तमान होना सारे कुलक को असंगत कर देता है—

प (1)	फ (2)	∼प (3)	प · (फ · ∼ प) (4)
1	1	0	0
1	0	0	0
0	1	1	0
0	0	1	0

मजेदार बात यह है कि असंगत आधार वाक्यों वाली युक्ति सदैव वैध होती है, क्योंकि असत्य प्रतिज्ञप्तियों का संयोजन सत्य और असत्य दोनों प्रकार के निष्कर्ष आपादित करता है। वैध होने पर भी ऐसी युक्ति सदैव

दोषपूर्ण होती है क्योंकि केवल वैधता किसी युक्ति को निर्दोष या पक्का नहीं बनाती। यदि सत्य निष्कर्ष प्राप्त करना है तो आधार वाक्यों को भी सत्य होना चाहिए।

3·1 निर्णय विधियाँ

किसी युक्ति की वैधता का निर्णय सत्यता-तालिका विधि के अतिरिक्त अन्य विधियों से हो सकता है। इन अन्य विधियों में प्रमुख है परोक्ष सत्यता-तालिका अथवा व्याघात प्रदर्शन विधि, संयोजी सामान्य आकार विधि, वियोजी सामान्य आकार विधि, आकारी-प्रमाण विधि, परोक्ष आकारी विधि और सोपाधिक प्रमाण विधि।

3·11 सत्यता-तालिका निर्णय विधि

(1) मान लीजिए एक युक्ति इस प्रकार है—'यदि गोडसे निर्दोष है तो कुछ साक्षी मिथ्याभाषी हैं। परन्तु कोई भी साक्षी मिथ्याभाषी नहीं है। अतएव गोडसे निर्दोष नहीं है।।' इस युक्ति में दो आधार प्रतिज्ञप्तियाँ हैं और एक निष्कर्ष। पहली आधार प्रतिज्ञप्ति आपादनात्मक है और दूसरी आधार प्रतिज्ञप्ति के आपाद्य का निषेध है। 'अतएव' शब्द जिससे निष्कर्ष प्रारम्भ होता है, बताता है कि दोनों आधार प्रतिज्ञप्तियों को एक साथ मानने पर निष्कर्ष निकलता है। आधार प्रतिज्ञप्तियों और निष्कर्ष में आपादन का सम्बन्ध है।

यदि हम 'गोडसे निर्दोष है' के लिए प्रतिज्ञप्तीय चर 'प' को रखें और 'साक्षी मिथ्याभाषी हैं' के लिए 'फ' चर रखें तो युक्ति की अभिव्यंजना प्रतीकों द्वारा इस प्रकार होगी—'[(प⊃फ) · ∼फ]⊃∼प'। अब हम इसकी सत्यता-तालिका बनावें। अभी तक सत्यता-तालिकाओं की रचना में हमने चरों के सत्यता मूल्य को अलग-अलग स्तम्भों में रक्खा है और उनके दाहिनी ओर उन चरों के बीच में जो अचर है उसका सत्यता मूल्य पृथक् स्तम्भ में रक्खा है, जैसे—

प	फ	प⊃फ
1	1	1
1	0	0
0	1	1
0	0	1

यह प्रणाली प्रारम्भिक व्याख्या के लिए सुविधाजनक होते हुए भी सत्यता तालिकाओं के लिए कठिनाई पैदा करती है। इसलिए व्यवहार में सत्यता-तालिका को इस तरह निर्मित करना सुविधाजनक होता है जिसमें सारे

सूत्र की सत्यता संख्या तार्किक अचर के बिल्कुल नीचे रख दी जाती है और उसके दोनों ओर चरों के सत्यता मूल्य दे दिए जाते हैं। इस प्रकार—

प	⊃	फ
1	1	1
1	0	0
0	1	1
0	1	0

अब हम इस प्रणाली की सहायता से उपर्युक्त सूत्र की सत्यता-तालिका बनावें। इसके बनाने में सबसे पहले हमें प्रत्येक प्रतिज्ञप्तीय चर के सत्यता मूल्य लिखने होंगे। हम बाएँ से दाहिनी ओर अग्रसर होंगे। बाएँ से दाहिनी ओर जिस क्रम से प्रतिज्ञप्तीय चरों के सत्यता मूल्य भरेंगे उसको बताने के लिए चरों के ऊपर क्रमिक संख्याएं दे दी गई है।

1	2	3	4
[(प	⊃फ) · ∼ फ]⊃	∼प	
1	1	1	1
1	0	0	1
0	1	1	0
0	0	0	0

सत्यता-तालिका की रचना करने में दूसरा चरण यह होगा कि हम, बाएँ से दाहिने, न्यूनतम आधिपत्य वाले तार्किक अचरों के सत्यता मूल्य भरें। वर्तमान सूत्र में न्यूनतम आधिपत्य के अचर हैं—पहला '⊃' और दोनों निषेध के चिह्न। इन के क्रम को बताने के लिए हम 4 के आगे की संख्याओं को इस प्रकार लिखेंगे—

1	5	2	6	3	7	4
[(प	⊃	फ) ·	∼	फ]⊃	∼	प
1	1	1	0	1	0	1
1	0	0	1	0	0	1
0	1	1	0	1	1	0
0	1	0	1	0	1	0

सत्यता-तालिका को पूरा करने के लिए तीसरा चरण यह होगा कि हम बाकी अचरों के सत्यता मूल्य भी भर दें। और ऐसा करने में हम उन अचरों से प्रारम्भ करें जिनका आधिपत्य अपेक्षाकृत कम है और उनसे समापन करें जिनका अपेक्षाकृत अधिक है। पहले दो चरणों की तरह इसमें भी हम सत्यता मूल्य भरने का क्रम संख्या द्वारा विदित करें। इस तीसरे चरण को पूरा करके हम दिए हुए सूत्र की सत्यता-तालिका इस प्रकार रच सकते हैं—

1	5	2	8	6	3	9	7	4
[(प	⊃	फ)	·	∼	फ]	⊃	∼	प
1	1	1	0	0	1	1	0	1
1	0	0	0	1	0	1	0	1
0	1	1	0	0	1	1	1	0
0	1	0	1	1	0	1	1	0

तीसरे चरण में हमें शेष अचरों के सत्यता मूल्य भरने थे और उनमें भी प्रारम्भ उस अचर से करना था जिसका आधिपत्य अपेक्षाकृत कम है। वह अचर इस सूत्र में '·' है इसलिए उसको पहले भरा जाएगा और इस स्तम्भ की संख्या 8 होगी। अन्तिम अचर '⊃' है अतएव इसका स्तम्भ 9 होगा।

उपर्युक्त सत्यता-तालिका में ध्यान देने योग्य बात यह है कि सबसे अधिक आधिपत्य वाले अचर के स्तम्भ में केवल '1' ही हैं। अर्थात् यह सूत्र चरों के जितने भी सत्यता मूल्यों की संहतियाँ हो सकती हैं उन सब में सत्य है। इसका अर्थ है कि यह सूत्र तर्क सिद्ध है अर्थात् पुनरुक्ति है।

(2) मान लीजिए कि जिस युक्ति का विवेचन ऊपर किया गया है उसके स्थान पर युक्ति यह है—'यदि गोडसे निर्दोष है तो साक्षी मिथ्याभाषी हैं। परन्तु गोडसे निर्दोष नहीं है। अतएव साक्षी मिथ्याभाषी नहीं हैं।' इस युक्ति को हम प्रतीकों द्वारा इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—'[(प ⊃ फ) · ∼प] ⊃ ∼फ'। और इसकी सत्यता-तालिका के ऊपर दिए हुए चरणों द्वारा निम्नाङ्कित प्रकार से बना सकते हैं—

1	5	2	8	6	3	9	7	4
([प	⊃	फ)	·	∼	प	⊃	∼	फ
1	1	1	0	0	1	1	0	1
1	0	0	0	0	1	1	1	0
0	1	1	1	1	0	0	0	1
0	1	0	1	1	0	1	1	0

इस तालिका में मुख्य अचर के स्तम्भ में सब मूल्य '1' नहीं है वल्कि तीसरी पंक्ति में एक '0' भी है। अर्थात् यह सूत्र प्रत्येक दशा में सत्य नहीं है। अर्थात् यह सूत्र 'संश्लेषी' या 'आपातिक' है, क्योंकि इसकी सत्यता किन्हीं दशाओं में है और किन्हीं दशाओं में नहीं है।

(3) अब हम उपर्युक्त दोनों युक्तियों के स्थान पर इस युक्ति पर विचार करें 'यदि वर्षा होती है, तो भूमि भीगती है। वर्षा हुई है। अतएव भूमि भीगी है।' इस युक्ति को हम प्रतीकों की भाषा में लिखकर उसकी सत्यता-तालिका निम्नांकित प्रकार से बना सकते हैं। इसकी सत्यता-तालिका में भी देखने की वात यह है कि मुख्य अचर के स्तम्भ में केवल '1' ही आते हैं। अर्थात् यह युक्ति भी तर्क-सिद्ध या पुनरुक्ति है।

1	5	2	6	3	7	4
[(प	⊃	फ)	·	प]	⊃	फ
1	1	1	1	1	1	1
1	0	0	0	1	1	0
0	1	1	0	0	1	1
0	1	0	0	0	1	0

(4) उपर्युक्त युक्ति के स्थान पर हम अब इस युक्ति पर विचार करें— 'यदि वर्षा होती है तो भूमि भीगती है। परन्तु भूमि भीगी नहीं है। अतएव वर्षा नहीं हुई है।' इस युक्ति को प्रतीकों की भाषा में—

[(प ⊃ फ) · ∼फ] ⊃ ∼प

के रूप में लिखकर उसकी सत्यता-तालिका निम्न प्रकार से बना सकते हैं। इस सत्यता-तालिका में देखने योग्य बात यह है कि इसके मुख्य अचर के स्तम्भ मे '1' ही हैं। अर्थात् यह सूत्र भी पुनरुक्ति है—

1	7	2	8	4	3	9	6	5
[(प	⊃	फ)	·	∼	फ]	⊃	∼	प
1	1	1	0	0	1	1	0	1
1	0	0	0	1	0	1	0	1
0	1	1	0	0	1	1	1	0
0	1	0	1	1	0	1	1	0

(5) अब हम इस युक्ति पर विचार करें : 'यह असत्य है कि यदि वर्षा होती है तो भूमि भीगती है और वर्षा हो रही है, अतएव भूमि भीगी है।' इस युक्ति का प्रतीकात्मक सूत्र इस प्रकार है—

~(प ⊃ फ) · प] ⊃ फ

और इसकी सत्यता-तालिका नीचे दी हुई है। इस तालिका में भी मुख्य अक्षर के नीचे '1' और '0' दोनों मिलते हैं। अर्थात् यह युक्ति दो दशाओं में सत्य है और दो दशाओं में असत्य। अतएव यह सूत्र भी संश्लेषी या आपातिक है।

7	1	5	2	6	3	8	4
[~	(प	⊃	फ)	·	प]	⊃	फ
0	0	1	1	1	1	1	1
1	1	0	0	0	1	0	0
1	0	1	1	0	0	1	1
1	0	1	0	0	0	0	0

(6) अब हम इस युक्ति पर विचार करें : 'यह असत्य है कि यदि वर्षा होती है, तो भूमि भीगती है, और वर्षा हो रही है। अतएव भूमि भीगी नहीं है।' इस युक्ति को प्रतीकों द्वारा इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

[~(प ⊃ फ) · प] ⊃ ~फ

और इस की सत्यता-तालिका निम्न प्रकार से बन सकती है। इस की सत्यता-तालिका में मुख्य अक्षर के नीचे एक '0' है। इसलिए यह युक्ति भी संश्लेषी है।

8	1	5	2	7	3	9	6	4
[~	(प	⊃	फ)	·	प]	⊃	~	फ
0	1	1	1	1	1	1	0	1
1	1	0	0	0	1	1	1	0
1	0	1	1	0	0	0	0	1
1	0	1	0	0	0	1	1	0

(7) अब इस युक्ति पर विचार कीजिए : 'या तो वर्षा नहीं होती या भूमि भीगती है। पानी बरसा है। अतएव भूमि भीगी है।।' इस की सत्यता-तालिका निम्नांकित प्रकार की है और इसके मुख्य अक्षर के नीचे केवल 1 ही हैं। इसलिए यह पुनरुक्ति है। यह आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि '(प ⊃ फ) ≡

(~प∨फ)' है और युक्ति (3) और इसमें केवल इतना ही भेद है कि 'प फ' के स्थान पर '~प ∨ फ' प्रयुक्त हुआ ।

5	1	6	2	7	3	8	4
[(~	प	∨	फ)	·	प]	⊃	फ
0	1	1	1	1	1	1	1
0	1	0	0	0	1	1	0
1	0	1	1	0	0	1	1
1	0	1	0	0	0	1	0

(8) अब यह युक्ति लीजिए : 'या तो वह मूर्ख है या दार्शनिक । परन्तु वह मूर्ख नहीं है । अतएव वह दार्शनिक है ।।' इस युक्ति की सत्यता-तालिका निम्नांकित प्रकार की है और इस में भी मुख्य अचर के नीचे केवल '1' ही पाए जाते हैं । अर्थात् यह भी तर्क-सिद्ध या पुनरुक्ति है—

1	5	2	7	6	3	8	4
[(प	∨	फ)	·	~	प]	⊃	फ
1	1	1	0	0	1	1	1
1	1	0	0	0	1	1	0
0	1	1	1	1	0	1	1
0	0	0	0	1	0	1	0

(9) यह युक्ति लीजिए : 'या तो भारतवर्ष के वर्तमान प्रधानमन्त्री समाजवादी हैं या पूंजीवादी हैं । वर्तमान प्रधानमन्त्री समाजवादी हैं । अतएव प्रधानमन्त्री पूंजीवादी नहीं है ।।' इस की सत्यता-तालिका निम्न प्रकार से बनेगी और देखने पर यह ज्ञात होगा कि इस में भी मुख्य अचर के नीचे केवल '1' ही हैं । अर्थात् यह भी पुनरुक्ति है ।

1	5	2	7	3	8	6	4
[(प	∧	फ)	·	प]	⊃	~	फ
1	0	1	0	1	1	0	1
1	1	0	1	1	1	1	0
0	1	1	0	0	1	0	1
0	0	0	0	0	1	1	0

(10) यह युक्ति लीजिए : 'यह असत्य है कि उत्तर प्रदेश के वर्तमान मुख्यमन्त्री श्री चौधरी व श्री गुप्त दोनों हैं। श्री चौधरी मुख्यमन्त्री हैं। अतएव श्री गुप्त मुख्यमन्त्री नहीं हैं ।।' इस की सत्यता-तालिका निम्नांकित प्रकार की और उसको देखने से मालूम होगा कि यह युक्ति भी तर्कसिद्ध या वैध है।

7	1	5	2	8	3	9	6	4
[~	(प	·	फ)	·	प]	⊃	~	फ
0	1	1	1	0	1	1	0	1
1	1	0	0	1	1	1	1	0
1	0	0	1	0	0	1	0	1
1	0	0	0	0	0	1	1	0

(11) यह युक्ति लीजिए : 'यदि तुम सत्य बोलोगे तो तुम दोषी प्रमाणित होगे, यदि तुम झूठ बोलोगे तो तुम दोषी प्रमाणित होगे। परन्तु निश्चय ही या तो तुम झूठ बोलोगे या सत्य बोलोगे। अतएव तुम दोषी माने जाओगे ।।' इसकी सत्यता-तालिका इस प्रकार होगी और उस को देखने से यह ज्ञात होगा कि यह युक्ति भी वैध है।

1	8	2	11	3	9	4	12	5	10	6	13	7
{[(प	⊃	फ)	·	(ब	⊃	फ)]	·	(प	v	ब)}	⊃	फ
1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
1	1	1	1	0	1	1	1	1	1	0	1	1
1	0	0	0	1	0	0	0	1	1	1	1	0
1	0	0	0	0	1	0	0	1	1	0	1	0
0	1	1	1	1	1	1	1	0	1	1	1	1
0	1	1	1	0	1	1	0	0	0	0	1	1
0	1	0	0	1	0	0	0	0	1	1	1	0
0	1	0	1	0	1	0	0	0	0	0	1	0

(12) यह युक्ति लीजिए : 'यदि वह दर्शनशास्त्र नहीं जानता तो वह अज्ञानी है। यदि वह दर्शनशास्त्र की उपेक्षा करता है तो वह घमण्डी है। या तो वह दर्शनशास्त्र नहीं जानता या उसकी उपेक्षा करता है। अतएव या तो वह अज्ञानी है या घमण्डी है ।।' इसकी सत्यता-तालिका इस प्रकार होगी और उस को देखने से ज्ञात होगा कि यह युक्ति भी वैध या तर्कसिद्ध है।

1	9	2	13	3	10	4	14	5	11	6	15	7	12	8
{[(प	⊃	फ)	·	(ब	⊃	भ)]	·	(प	v	ब)}	⊃	(फ	v	ब)
1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
1	1	1	0	1	0	0	0	1	1	1	1	1	1	1
1	1	1	1	0	1	1	1	1	1	0	1	1	1	1
1	1	1	1	0	1	0	1	1	1	0	1	1	1	0
1	0	0	0	1	1	1	0	1	1	1	1	0	1	1
1	0	0	0	1	1	1	0	1	1	1	1	0	1	1
1	0	0	0	0	1	1	0	1	1	0	1	0	0	0
1	0	0	0	0	1	0	0	1	1	0	1	0	0	0
0	1	1	1	1	1	1	1	0	1	1	1	0	0	0
0	1	1	0	1	0	0	0	0	1	1	1	1	1	1
0	1	1	1	0	1	1	0	0	0	0	1	1	1	0
0	1	1	1	0	0	0	0	0	0	0	1	1	1	0
0	1	0	1	1	1	1	1	0	1	1	1	0	1	1
0	1	0	0	1	0	0	0	0	1	1	1	0	1	1
0	1	0	1	0	1	1	0	0	0	0	1	0	0	0
0	1	0	1	0	1	0	0	0	0	0	1	0	0	0

(13) यह युक्ति लीजिए : 'यदि मैं बारात में शामिल हूँगा तो मैं जाऊँगा। यदि मैं शामिल हूँगा तो कुछ लोगों को नाराज़ करूँगा। परन्तु या तो मैं शामिल होना नहीं चाहता या मैं किसी को नाराज़ नहीं करना चाहता। अतएव मैं बारात में नहीं शामिल हो रहा हूँ।।' इसकी सत्यता–तालिका इस प्रकार है, और सत्यता-तालिका से प्रत्यक्ष है कि युक्ति भी पुष्ट या तर्कसिद्ध है।

1	8	2	13	3	9	4	15	10	5	14	11	6	16	12	7
{[(प	⊃	फ)	·	(प	⊃	ब])	·	(~	फ	v	~	ब])	⊃	~	प
1	1	1	1	1	1	1	0	0		0	0		1	0	1
1	1	1	0	1	0	0	0	0		1	1		1	0	1
1	0	0	0	1	1	1	0	1		1	0		1	0	1
1	0	0	0	1	0	0	0	1		1	1		1	0	1
0	1	1	1	0	1	1	0	0		0	0		1	1	0
0	1	1	1	0	1	0	1	0		1	1		1	1	0
0	1	0	1	0	1	1	1	1		1	0		1	1	0
0	1	0	1	0	1	0	1	1		1	1		1	1	0

(14) यह युक्ति लीजिए : 'यदि स्त्रियाँ केवल शृंगार के लिए आभूषण पहनती हैं तो वह दम्भी हैं। यदि वह मनुष्यों को आकर्षित करने के लिए आभूषण पहनती हैं तो दुश्चरित्रा हैं। परन्तु वे दम्भी और दुश्चरित्रा दोनों तो नहीं हैं। अतएव या तो वे आभूषण शृंगार के लिए नहीं पहनती हैं या वे मनुष्यों को आकर्षित करने के लिए आभूषण नहीं पहनती हैं।।' इसकी सत्यता-तालिका इस प्रकार होगी—

1	9	2	15	3	10	4	18	11	5	16	12	6	19	13	7	17	14	8
{[(प	⊃	फ)	·	(ब	⊃	भ])	·	(~	फ	∨	~	भ)}	⊃	(~	प	∨	~	ब)
1	1	1	1	1	1	1	0	0	1	0	0	1	1	0	1	0	0	0
1	1	1	0	1	0	0	0	0	1	1	1	0	1	0	1	0	0	1
1	1	1	1	0	1	1	0	0	1	0	0	0	1	0	1	1	1	0
1	1	1	1	0	1	0	1	0	1	1	1	0	1	0	1	1	1	0
1	0	0	0	1	1	1	0	1	0	1	0	1	1	0	1	0	0	1
1	0	0	0	1	0	0	0	1	0	1	1	0	1	0	1	0	0	1
1	0	0	0	0	1	1	0	1	0	1	0	1	1	0	1	1	1	0
1	0	0	0	0	1	0	0	1	0	1	1	0	1	0	1	1	1	0
0	1	1	1	1	1	1	0	0	1	0	0	1	1	1	0	1	0	1
0	1	1	0	1	0	0	0	0	1	1	1	0	1	1	0	1	0	1
0	1	1	1	0	1	1	0	0	1	0	0	1	1	1	0	1	1	0
0	1	1	1	0	1	0	1	0	1	1	1	0	1	1	0	1	1	0
0	1	0	1	1	1	1	1	1	0	1	0	1	1	1	0	1	0	1
0	1	0	0	1	0	0	0	1	0	1	1	0	1	1	0	1	0	1
0	1	0	1	0	1	1	1	1	0	1	0	1	1	1	0	1	1	0
0	1	0	1	0	1	0	1	1	0	1	1	0	1	1	0	1	1	0

इस सत्यता-तालिका में भी मुख्य अचर के नीचे '1' ही मिलते है इसलिए यह युक्ति तर्कसिद्ध है। युक्तियों की तर्कसिद्धता को प्रमाणित करने के लिए सत्यता-तालिका विधि एक निश्चित या यान्त्रिक प्रणाली है। परन्तु जहाँ पर युक्तियों में चार से अधिक प्रतिज्ञप्तियों का समावेश होता है वहाँ पर सत्यता-तालिका की रचना असुविधाजनक हो जाती है। क्योंकि पंक्तियों की संख्या 32,64 अथवा गुणोत्तर श्रेणी में बढ़ेगी। भाग्यवश हमारे पास एक

परोक्ष और अपेक्षाकृत संक्षिप्त विधि भी उपलब्ध है जिससे युक्तियों की वैधता का निर्णय किया जा सकता है।

3·2 परोक्ष सत्यता-तालिका या बाधितार्थ विधि

यदि कोई युक्ति तर्क सिद्ध है तो उस की सत्यता-तालिका में मुख्य अचर के स्तम्भ में केवल '1' की संख्या मिलती है। अर्थात् किसी भी वैध युक्ति में मुख्य अचर के नीचे किसी भी पंक्ति में '0' नहीं मिल सकता। अब कल्पना करें कि '0' मिलता है, तो इस का परिणाम अन्य स्तम्भों पर यह होना चाहिए कि उनके सत्यतामूल्य भरने पर हमें कहीं न कहीं सत्यता-तालिका रचना के नियमों का उल्लंघन करना पड़ेगा। अर्थात् हमें व्याघात का सामना करना पड़ेगा। मान लीजिए कि हमारे सामने सूत्र हैं :

$$[(प \supset फ) \cdot \sim फ)] \supset \sim प$$

इसकी सत्यता-तालिका बनाई जा चुकी है। अब हम इस सूत्र के मुख्य अचर के नीचे '0' लिखें और इसके परिणामस्वरूप अन्य स्तम्भों का सत्यता मूल्य नियमानुसार भरें। हम सत्यता-मूल्य भरने की प्रक्रिया को कई पगों में पूरा करेंगे और प्रत्येक पग में कि मूल्यों को भरें इसको बताने के लिए उन मूल्यों के नीचे उस पग की संख्या लिख देंगे। ताकि आवश्यकता पड़ने पर हम किस पग में त्रुटि हुई है यह जान सकें। वर्तमान सूत्र के सत्यता-मूल्य हम चार पगों में इस प्रकार भरेंगे—

	[(प	⊃	फ)	·	∼फ]	⊃	∼प
				1		0	0
पग 1 :				(1)			(1)

इस पग में चूंकि मुख्य अचर आपादन '⊃' है और उसका मूल्य हम '0' मानकर चलते हैं इसलिए इसके आपादक का मूल्य '1' होगा और आपाद्य का '0' क्योंकि आपादन इसी एक दशा में असत्य होता है। इसलिये हम लिखें—

	[(प	⊃	फ)	·	∼	फ]	⊃	∼	प
		1		1	1		0	0	
पग 2 :		(2)		(1)	(2)			(1)	

चूंकि पग 1 से ज्ञात हुआ है कि '·' सत्य है और हमें संयोजक की सत्यता-तालिका से ज्ञात है कि संयोजक केवल एक ही दशा में सत्य होता है जबकि उसके सभी संयोज्य सत्य होते हैं इसलिए 'प' तथा 'फ' के बीच '⊃'

भी सत्य होगा और 'फ' के पहले '~' भी क्योंकि यही यहाँ पर संयोज्य है। इसलिए लिखें—

	[(प	⊃	फ)	·	~	फ]	⊃	~	प
		1		1	1	0	0	0	1
पग 3 :		(2)		(1)	(2)	(3)		(1)	(3)

दूसरे पग से 'फ' का निषेध '~' सत्य होता है और इसलिए 'फ' असत्य होगा। पहले पग से 'प' का निषेध असत्य होता है। इसलिए 'प' सत्य होगा। इसलिए लिखें :

	[(प	⊃	फ)	·	~	फ]	⊃	~	प
	1	1	0	1	1	0	0	0	1
पग 4 :	(4)	(2)	(4)	(1)	(2)	(3)		(1)	(3)

पग 3 से 'फ' असत्य और 'प' सत्य निकलता है। अब हम इन मूल्यों को '(प ⊃ फ)' में 'प' और 'फ' के नीचे लिखें। ऐसा करने के साथ ही सूत्र के जितने भी चर और अचर हैं उन सब के सत्यता मूल्य भरने की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। परन्तु इस अन्तिम पग में हम सत्यता-तालिका रचना के नियमों का उल्लंघन करते हैं। क्योंकि पग दो से आपादन तो सत्य निकलता है। पग 4 के अनुसार 'प' तो सत्य है और 'फ' असत्य। पर आपादन की सत्यता-तालिका के अनुसार यह सम्भव नहीं है। अर्थात् जो हमारी प्रारम्भिक कल्पना कि मुख्य अचर के नीचे '0' मिलता है उसको नियमानुसार सत्यता-तालिका बनाने पर व्याघात उत्पन्न होता है। इसलिए हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मुख्य स्तम्भ में कोई '0' नहीं हो सकता, अर्थात् यह सूत्र तर्कसिद्ध है। यही परिणाम सत्यता-तालिका विधि से भी निकला था।

इसके विपरीत यदि मुख्य अचर के नीचे '0' की कल्पना करके अन्य अचरों का सत्यता मूल्य भरने में हमें किसी भी सत्यताफलन का उल्लंघन न करना पड़े तो इसका अर्थ होगा कि हमारी प्रस्तावित कल्पना ठीक थी। अर्थात् युक्ति तर्कसिद्ध नहीं है। उदाहरण के लिए हम सूत्र लें—

[(प ⊃ फ) · ~ प] ⊃ ~ फ

इसकी निम्नांकित परीक्षा परोक्ष विधि से करने पर किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता दिखाई देता।

[(प	⊃	फ)	·	~	प]	⊃	~	फ
0	1	1	1	1	0	0	0	1
(4)	(2)	(4)	(1)	(2)	(3)		(1)	(3)

पहले पग में मूल '⊃' को '0' मानने से उस के आपादक '·' का सत्यता मूल्य '1' हो जाता है और आपाद्य का '0'। दूसरे पग में '0' के '1' होने से उस के संयोज्य '⊃' एवं '~प' '1' हो जाते हैं। पग तीन में '~प' के '1' होने से और '~फ' के '0' होने से 'प' और 'फ' क्रमश: '0' और '1' होते हैं। चौथे पग में हम 'प' और 'फ' के मूल्य क्रमश: '0' और '1' रखते हैं और ऐसा करने पर पग दो में '⊃' को '1' का जो मूल्य दिया गया था वह ठीक सिद्ध होता है और इस प्रकार कहीं भी किसी नियम का उल्लंघन नहीं होता इसलिए इस सूत्र को अवैध मानना युक्तिसंगत है।

अब हम एक ऐसे सूत्र की परीक्षा जिसमें कि कई अचर आते हैं, परोक्ष विधि से करें। ऐसा सूत्र और उसका परीक्षण इस प्रकार है।

[(प	⊃	फ)	⊃	व]	⊃	[(व	⊃	प)	⊃	(भ	⊃	प)]
0	0		1	0	0	0	1	0	0	1	0	0
(4)	(7)		(1)	(6)		(5)	(2)	(4)	(1)	(3)	(2)	(3)

इस उदाहरण में 'प ⊃ फ' में 'प' का मूल्य '0' है और 'प ⊃ फ' के आपादन का भी मूल्य '0' है। परन्तु आपादन फलन की सत्यता-तालिका परिभाषा से दोनों का '0' होना असंभव है। इसलिए यह सूत्र तर्कसिद्ध है। देखिए 'फ' का मूल्य नहीं निश्चित किया गया क्योंकि चाहे वह '0' या '1' हो तो भी परिणाम वही रहेगा अर्थात् आपादन की सत्यता–तालिका का उल्लंघन होगा।

अब हम निम्नांकित सूत्र का परोक्ष विधि से परीक्षण करें।

{ [(प	⊃	फ)	·	(व	⊃	भ)]	·	(प	v	व) }	⊃	(फ	v	भ)
0	1	0	1	1	1	0	1	0	1	1	0	0	0	0
6	3	5	2	9	3	10	1	7	2	8		4	1	4

हमें पता लगता है कि पग '1' में ही मुख्य अचर '·' को मानने पर आपादन की सत्यता-तालिका का उल्लंघन करना पड़ता है। पग 3 के अनुसार 'व भ' सत्य है, परन्तु पग 9 और 10 के अनुसार 'व' का मूल्य '1' और 'भ'

का मूल्य '0' होता है। परन्तु ऐसी दशा में 'व भ' सत्य नहीं हो सकता। अतएव यह सूत्र भी तर्कसिद्ध है।

अब हम निम्नलिखित सूत्र लें और उसकी परीक्षा परोक्ष विधि से करें :

[{[(प ⊃ ∼ फ) · व] ∨ (भ · प)} · (प · फ)] ⊃ (व · भ)

1 0 0 1 0 0 1 1 1 1 1 1 1 1 0 0 0 1

4 7 6 5 8 14 2 10 9 11 1 3 2 3 13 1 12

उपर्युक्त सूत्र में मूल्यों को भरने पर कहीं भी किसी नियम का उल्लंघन नहीं होता और इसलिए यह सूत्र अपुष्ट है। इसके मुख्य अचर के स्तम्भ में '0' आ सकता है।

कभी-कभी कुछ ऐसे भी सूत्र मिल जाते हैं जिनका परीक्षण एक पंक्ति में पूरा नहीं हो सकता। यह तब होता है जबकि 'v' या '⊃' के नीचे '1' या ' ' के नीचे '0' देना पड़ता है। ऐसी दशा में हमें परीक्षण को पूरा करने के लिए कई पंक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे सूत्र बहुत कम होते हैं और उनको प्रमाणित करने में यद्यपि कई पंक्तियों का प्रयोग करना पड़ता है तो भी सारा प्रयत्न उस सूत्र की सत्यता-तालिका विधि द्वारा परीक्षण की अपेक्षा कम ही होता है।

परोक्ष विधि में सफलता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित नियमों पर ध्यान रखना आवश्यक है। ये नियम कोई नए नहीं हैं बल्कि प्रमुख अचरों की सत्यता-तालिकाओं का ही उपयोग करते हैं। फिर भी सुविधा के लिए उनको एक स्थान पर दिया जा रहा है—

(1) यदि कोई आपादन असत्य है तो उसका आपादक सत्य है और आपाद्य असत्य।

(2) यदि कोई संयोजक सत्य है तो उसके संयोज्य सत्य हैं।

(3) यदि कोई वियोजक असत्य है तो उसके वियोज्य असत्य हैं।

(4) संयोजक की असत्यता से संयोज्यों का मूल्य नहीं निश्चित किया जा सकता।

(5) यदि वियोजन सत्य है तो वियोज्यों का मूल्य निश्चित नहीं किया जा सकता।

(6) यदि आपादन सत्य है तो आपादक और आपाद्य का मूल्य निश्चित नहीं किया जा सकता।

इन नियमों में से पहले पाँच का ही उपयोग परोक्ष विधि से परिणाम पर पहुँचने के लिए अपेक्षित है ।

3·3 संयोजी प्रसामान्य आकार विधि

जब किसी सूत्र में प्रतिज्ञप्तीय चरों की संख्या चार से अधिक होती है तो सत्यता-तालिका विधि का प्रयोग असुविधाजनक होता है । ऐसे सूत्रों की परोक्ष विधि से हो सकती है । परन्तु परीक्षण की एक और भी सरल विधि है जिसका आधार परिचित पुनरुक्तियाँ हैं । इस विधि में किसी दिए हुए सूत्र को उसके संयोजी प्रसामान्य आकार में परिवर्तित किया जाता है और इस रूप को संक्षेप में 'क्लासिकी आकार' कहते हैं ।

यह तो सिद्ध है कि किसी भी तार्किक अचर की व्याख्या दूसरे अचरों द्वारा की जा सकती है । उदाहरण के लिए एक सूत्र जिसमें कि '·' तथा '⊃' पाए जाते हैं, उसका रूपान्तर, एक समानान्तर सूत्र में जिसमें केवल '∼' 'v' पाए जाते हैं, हो सकता है । यथा :

$$[(प \supset फ) \cdot (फ \supset ब)] \supset (प \supset ब)$$

का अनुवाद निम्न रूप में कर सकते हैं :

$$\sim\sim[\sim(\sim प \vee फ) \vee \sim(\sim फ \vee ब)] \vee (\sim प \vee ब)$$

क्योंकि '$(प \supset फ) \equiv (\sim प \vee फ)$' तथा '$(प \cdot फ) \equiv \sim(\sim प \vee \sim फ)$' ।

अचरों की अन्तर्व्याख्या के फलस्वरूप हम किसी भी सूत्र को फिर से इस प्रकार लिख सकते हैं कि उसमें केवल वियोज्यों का संयोजन हो । इससे लाभ यह होता है कि किसी भी सूत्र की वैधता सहज ही स्पष्ट हो जाती है । संयोजन फलन की यह विशेषता है कि यदि संयोज्य में से कोई भी असत्य हो तो संयोजक असत्य हो जाता है । किसी सूत्र के वियोज्यों को संयोजन का रूप देने पर यदि कोई भी वियोज्य असत्य होगा तो सारा सूत्र असत्य हो जाएगा और वियोज्यों की सत्यता या असत्यता दृष्टि डालने से ही ज्ञात हो जाएगी । यह सत्यता या असत्यता बिना किसी कष्ट या द्विविधा के ज्ञात हो जाए इसके लिए दो नियम बना लिए गए हैं :

(1) वियोजन में केवल प्रतिज्ञप्तीय चर या उनके निषेध रहें और यह सदैव एक निर्धारित क्रम में हो जो क्रम वही हो जोकि वर्णमाला का हो । परन्तु यदि एक प्रतिज्ञप्तीय चर तथा इसका निषेध दोनों ही वर्तमान हों तो निषेधित चर अपने अनिषेधित चर के तुरन्त बाद लिखा जाएगा ।

(2) वियोजन में कोष्ठक भी एक निश्चित क्रम में, अर्थात् बाएँ से दाहिने लगाए जायं। प्रत्येक प्रतिज्ञप्तीय चर के बाद, केवल पहले और अन्तिम को छोड़कर, कोष्ठक लगता है।

इन दोनों नियमों को लागू करने पर वियोज्यों का जो संयोजन बनता है उसमें भी एक निश्चित क्रम मिलता है और उसको 'संयोजी प्रसामान्य आकार' कहा जाता है।

हम सिद्ध कर सकते हैं कि :

(प्रमेय 1) वियोज्यों का संयोजन यदि आदर्श क्रम में नहीं है तो उसे एक समान संयोजी प्रसामान्य आकार, संक्षेप में 'संप्रआ', पुनरुक्ति संख्या 4 को लागू करके, रूपान्तरित कर सकते हैं, ऐसा सदैव ही किया जा सकता है।

हम किसी सूत्र का रूपान्तर संप्रआ में निम्न प्रकार से करते हैं। पहले सब दोहरे निषेधों को पुनरुक्ति 1·4 के आधार पर हटा देते हैं। यह क्रिया आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक नए पग के बाद दोहराई जाती है। फिर जहाँ 'प ⊃ फ' है उनके स्थान पर '∼प v फ' नियम 6·1 के अनुसार लिख दिया जाता है। इसके बाद हम '∼(प · फ)', '∼(प v फ)' जैसे सूत्रों के स्थान पर क्रमश: नियम 5·1, 5·2 व 1·4 के अनुसार लिखते हैं। हम इस प्रकार का रूपान्तरण तबतक करते रहेंगे जबतक किसी भी कोष्ठक के पहले निषेध का चिह्न समाप्त न हो जाय और तब हम उस प्राप्त सूत्र के वियोज्यों के संयोजन में नियम 4·1 तथा 4·2 को बार-बार लागू करके रूपान्तरित करते हैं और अन्त में नियम 2·1, 3·1, 2·2 तथा 3·2 के द्वारा संप्रआ को प्राप्त करते हैं। यह प्रक्रिया तबतक की जा सकती है जबतक कि संप्रआ प्राप्त या आकृत्यांतरित न हो जाय। इससे हम यह पाते हैं कि :

(प्रमेय 2) प्रत्येक सूत्र को एक समान संप्रआ में 1·4, 3·1, 2·1, 3·2, 2·2, 4·1, 4·2, 5·1, 5·2, 6·5 तथा 6·1 के नियम को लागू करके विघटित किया जा सकता है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि

(प्रमेय 3) प्रत्येक पुनरुक्तीय सूत्र नियम 1·4, 2·1, 2·2, 3·1, 3·2, 4·1, 4·2 को लागू करके संप्रआ में परिवर्तित किया जा सकता है।

(प्रमेय 4) एक संप्रआ एक पुनरुक्ति है यदि और केवल यदि उसका प्रत्येक वियोजी अंग पुनरुक्ति है।

(प्रमेय 5) एक वियोजन जिसके अंग प्रतिज्ञप्तीय चर हैं, एक पुनरुक्ति है यदि और केवल यदि कम से कम एक प्रतिज्ञप्तीय चर और उसका निषेध

नियोजन में पाया जाता है। यदि ऐसा वियोजन आदर्श क्रम में है तो प्रतिज्ञप्तीय चर उसके निषेध के पहले स्वाभाविक रूप से आएगा।

नीचे दिये गए उदाहरणों द्वारा किसी सूत्र को संप्रआ में रूपान्तर करने की प्रक्रिया को समझा जा सकता है :

उ० (क) [(प ⊃ फ) · ∼फ] ⊃ ∼प

∼[(∼प v फ) v ∼∼प] v ∼प नियम 6·1 से

[∼(∼प v फ)   ∼∼फ)]   ∼प नियम 1·4 तथा 5·1 से

[(प · ∼फ) v फ] v ∼प नियम 1·4 तथा 5·2 से

[(फ v प) · (फ v ∼फ)] v ∼प नियम 2·1 तथा 4·2 से

[(प v ∼प) v फ] · [(∼प v फ) v ∼फ] नियम 2·1 तथा 4·2 से

(प v ∼प v फ) · (∼प v फ v ∼फ) साहचर्य के नियम से

उ० (ख) [(प ⊃ फ) · (फ ⊃ ब)] ⊃ (प ⊃ ब)

पहले हम (ख) को नियम 6·1 से रूपान्तर करते हैं।

∼[(∼प v फ) · (∼फ v ब)] v (∼ v ब)

फिर नियम 5·2 को लागू करके दोहरे निषेधों को नियम 1·4 का पालन करके छोड़कर लिखते हैं :

[∼(∼प v फ) v ∼(∼ फ v ब)] v (∼ प v ब)

एकबार फिर डी मार्गन के नियम को लागू करने पर हम लिखते हैं :

[(प · ∼फ) v (फ · ∼ब)] v (∼प v ब)

वियोज्यों के पहले दो सदस्यों पर वितरण के नियम लागू कर, हम पाते हैं :

[(प v फ) · (प v ∼ब) · (फ v ∼फ) · (∼फ v ∼ब)] v (∼प v ब)।

अन्त में नियम 2·1 को लागू करके हम वियोजन के दूसरे पद को सूत्र के सामने ला सकते हैं और फिर नियम 4·2 को लागू करके प्राप्त करते हैं :

(प v ∼प v फ v ब) · (प v ∼प v ब v ∼ब) ·
(∼प v फ v ∼फ v ब) · (∼प v ∼फ v ब v ∼ब)।

अब (ख) संयोजी प्रमामान्य आकार में है।

उ० (ग) [(प ⊃ फ) · ∼प] ⊃ ∼फ

पहले हम नियम 6·1 को आपादन पर लागू करके उसका निषेध और वियोजन द्वारा इस प्रकार रूपान्तर करते हैं :

~[{(~प V फ) · ~प}] V ~फ ।

फिर हम डी मार्गन का नियम लगाकर संयोजन के चिह्न को इस प्रकार बदलते है :

~~[~(~प V फ) V ~~प] V ~फ ।

फिर हम नियम 1·4 के अनुसार दोहरे निषेधों को छोड़ देते हैं । और फिर नियम 2·2 के अनुसार सूत्र का समूहीकरण इस प्रकार करते हैं :

~(~प V फ) V (प V ~फ)

और फिर नियम 1·4 और डी मार्गन के नियम को लगाकर प्राप्त करते हैं :

(प · ~फ) V (प V ~फ)

अन्त में हम मुख्य वियोजन में तत्त्वों का क्रम नियम 2·1 के अनुसार बदलते हैं और नियम 4·2 का उपयोग करके प्राप्त करते हैं :

(प V प V ~फ) · (प V ~फ V ~फ) ।

अब सूत्र (ग) संयोजी प्रसामान्य आकार में है ।

यदि हम संयोजी प्रसामान्य आकार (क) (ख) (ग) पर ध्यान दें तो देखेंगे कि (क) और (ख) दोनों में प्रत्येक संयोज्य में एक प्रतिज्ञप्तीय चर और उसका निषेध 'V' द्वारा युक्त है । (क) में पहले संयोज्य में 'प' तथा '~प', 'V' से युक्त है और इसके संयोज्य में 'फ' तथा '~फ' इसी प्रकार युक्त है । इस प्रकार के प्रतिज्ञप्तीय चर और उसके निषेध का वियोजन एक पुनरुक्ति है । इसके अतिरिक्त यदि ऐसे सूत्र में वियोजन द्वारा कितने ही प्रतिज्ञप्तीय चर, चाहे उनके सत्यता-मूल्य कुछ भी हों, जोड़ दिए जांय तो भी वह सूत्र तर्क सिद्ध रहेगा । दूसरे शब्दों में जैसे 'प V ~प' एक पुनरुक्ति है वैसे ही 'प V ~प V फ' तथा 'प V~प V फ V ब V · · ·' आदि भी पुनरुक्तियां हैं । अर्थात् यदि या तो वर्षा हो रही है, या नहीं हो रही है, तर्क सत्य है तो 'या तो वर्षा हो रही है, या नहीं हो रही है या दो का दुगुना पाँच होता है' भी तर्क सत्य है ।

यदि अब हम उपर्युक्त तीनों सूत्रों के संयोजी प्रसामान्य आकार

(क) (प V ~प V फ) · (~प V फ V ~फ);

(ख) (प V ~प V फ V ब) · (प V ~प · ब V ~ब) ·
(~प V फ V ~फ V ब) · (~प V ~फ V ब V ~ब);

(ग) (प v प v ∼फ) · (प v ∼फ v ∼फ)

की परीक्षा करें तो हम देखेंगे कि (क) तथा (ख) में संयोजन का प्रत्येक तत्त्व तर्कसत्य है, क्योंकि प्रत्येक में वियोजन के तत्त्व में एक प्रतिज्ञप्तीय चर और उसका निषेध मिलता है। इसलिए प्रत्येक संयोज्य तर्कसत्य है और फलस्वरूप सारा सूत्र भी। परन्तु (ग) में यह परिस्थिति नही पाई जाती और इसलिए (ग) तर्कसत्य नहीं है।

सरांश यह है :

(1) 'पा v ∼पा' तर्कसत्य है।

(2) यदि 'पा' तर्कसत्य है तो 'पा v फा' भी तर्कसत्य है।

(4) यदि 'पा' तथा 'फा' तर्कसत्य है तो 'पा-फा' तर्कसत्य हैं।

यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि दीर्घ पा, फा····किसी भी निषेधित या अनिषेधित प्रतिज्ञप्तीय चर तथा किसी भी सत्यता फलन को जो कि प्रतिज्ञप्तीय चरों से मिलकर बना है निर्देशित करते हैं।

3·4 वियोजी प्रसामान्य आकार विधि

इस विधि की कल्पना उसी तर्क पर आधारित है जिस पर संयोजी प्रसामान्य आकार विधि का आविष्कार हुआ है। दोनों का प्रयोग समान प्रक्रिया व पगों द्वारा होता है। दोनों में अन्तर यह है कि जबकि संयोजी सा० आ० में वियोज्यों का संयोजन होता है, वि० सा० आ० में संयोज्यों का वियोजन होता है। सं० सा० आ० विधि की तुलना में वि० सा० आ० विधि का उपभोग कम होता है। इसलिए इसको विस्तार से नहीं बताया जा रहा है।

3·5 आकारी प्रमाण विधि

सत्यता-तालिका तथा प्रसामान्य आकार की विधियां ऐसी निर्णय प्रणालियां हैं जिनको कि हम किसी सूत्र पर वैधता की कसौटी के रूप में लागू कर सकते हैं। वे हमें किसी सूत्र के विषय में बताती हैं कि सूत्र तर्क सत्य है या नहीं। एक ऐसी विधि भी है जिसके द्वारा हम यह दिखा सकते हैं कि कोई प्रस्तावित निष्कर्ष आधार प्रतिज्ञप्तियों से जाने हुए तर्क-सत्य सूत्रों द्वारा निकलता है। इस विधि को हम प्रतिस्थापन द्वारा सिद्धि कह सकते हैं। यह विधि युक्तियों की वैधता या अवैधता को तय करने की एक प्रणाली नहीं है, क्योंकि हमें यह नहीं बता सकती कि कोई प्रस्तावित सूत्र वैध है या नहीं। यह केवल हमें इतना ही बता सकती है कि कोई विशिष्ट सूत्र आधार प्रति-

ज्ञप्तियों से सिद्ध होता है, यदि वह वास्तव में सिद्ध हो सकता है। अर्थात् इस विधि से हम युक्ति की वैधता का पता लगा सकते हैं, परन्तु अवैधता का नहीं।

इस विधि का प्रयोग करने के लिए हमें यह मानकर चलना होगा कि यदि एक सूत्र दूसरे सूत्र से प्राप्त हो सकता है अर्थात् उसका प्रतिस्थापन एक ऐसे सूत्र से हो सकता है जिसकी सर्वसमता हम पहले से जानते हैं तो मूल सूत्र प्रतिस्थापन सूत्र के समान है। उदाहरण के लिए :

(1) प · (फ ∨ व)

हमें ज्ञात है कि नियम 4 · 1 से :

(2) (प · फ) ∨ (प · व) के समान है। इसलिए हम (2) को (1) के स्थान पर सर्वत्र लिख सकते हैं।

यदि सूत्र हो :

(3) पा ⊃ फा ≡ (वा ∨ भा)

और हमें पुनरुक्तियों की सूची से ज्ञात है कि 'फा ≡ मा' और 'वा ≡ ∼या' तो हम (3) को लिख सकते हैं :

(4) (पा ⊃ मा) ≡ (∼या ∨ भा)।

हम को यह भी मानना होगा कि 8 · 12 तथा नियम 8 · 5 के अनुसार (i) यदि हमारे पास आपादनात्मक सूत्र 'पा ⊃ फा' तथा 'फा ⊃ वा' हैं तो हम 'पा ⊃ वा' को भी सिद्ध मान सकते हैं।

(ii) यदि हमारे पास 'पा ⊃ फा' है और 'पा' (आपादक) भी है तो हम 'फा' (आपाद्य) को भी सिद्ध मान सकते हैं।

आकारी प्रमाण विधि को दृष्टान्तों से स्पष्ट कर सकते हैं।

(क) 'यदि ह० द० मु० कलकत्ते में छिपे हैं तो यह असत्य है कि वह निर्दोष है तथा वन्दी होने से सुरक्षित हैं। यदि वह अपने खाते की जांच कराएंगे तो वह निर्दोष हैं। यदि वह निर्दोष हैं तो वन्दी होने से सुरक्षित हैं। वह खाते की जांच करवायेंगे। अतः वह कलकत्ते में नहीं छिपेगा।।'

पहले हम इस युक्ति में सन्निहित प्रतिज्ञप्तियों को प्रतीकों द्वारा व्यक्त करें।

छि = ह० द० मु० कलकत्ते में छिपे हैं।

नि = ह० द० मु० निर्दोष है।

सु = ह० द० मु० वन्दी होने से सुरक्षित हैं।

जा = ह० द० मु० खाते की जांच करवायेंगे।

अब हम चारों आधार प्रतिज्ञप्तियों और निष्कर्ष को इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकते हैं :

(1) छि ⊃ ∼(नि · सु)

(2) जा ⊃ नि

(3) नि ⊃ सु

(4) जा

अतएव : ∼छि

अब हम निष्कर्ष को आकारी प्रमाण विधि द्वारा इस प्रकार सिद्ध कर सकते हैं :

(5) (नि · सु) ⊃ ∼छि (नियम 1 · 4 तथा 6 · 5 को लगाकर (1) से)

(6) नि (नियम 8 · 5 को लगाकर (2) तथा (4) से)

(7) सु (नियम 8 · 5 को लगाकर (2) तथा (6) से)

(8) ∼छि (नियम 8 · 5 को लगाकर (6), (7) तथा (5) से) ।

(ख) 'यदि गन्ने का भाव गिरता है तो अनाज की फसल नष्ट हो जाती है तो या तो किसान घाटे में रहेगा या वह ऋणी हो जाएगा । यदि अनाज की फसल नष्ट हो जाएगी या किसान घाटा खाएगा तो शासकों के प्रति दुर्भावना पैदा होगी । परन्तु शासकों के प्रति दुर्भावना नहीं पैदा होगी । गन्ने के दाम गिरेंगे । अतः किसान ऋणी होगा ।।'

पहले की तरह हम युक्ति में सन्निहित प्रतिज्ञप्तियों के लिए प्रतीक रखें :

गि = गन्ने का भाव गिरता है ।

ख = अनाज की फसल खराब होती है ।

घा = किसान घाटे में रहेगा ।

ऋ = किसान ऋणी हो जाएगा ।

दु = शासकों के प्रति दुर्भावना होगी ।

अब युक्ति को इस प्रकार अभिव्यक्त तथा परीक्षा कर सकते हैं :

(1) (गि) ∨ ख) ⊃ (घा ∨ ऋ)

(2) (ख ∨ घा) ⊃ दु

(3) ∼दु

(4) गि

अतएव : ऋ

(5) ∼दु ⊃ ∼(ख ∨ घा) (नियम 6 · 5 को लगाकर (2) से)

(6) ∼(ख ∨ घा) (नियम 8 · 5 को लगाकर (5) तथा (3) से)

(7) ∼ख · ∼घा (नियम 5 · 1 को लगाकर (6) से)

(8) ∼(गि ख) v (घा v ङ) (नियम 6 · 1 से लगाकर (1) से)
(9) (∼गि · ख) v (घा v ङ) (नियम 5 · 1 को लगाकर (8) से)
(10) (घा v ङ v∼गि) · (घा v ङ v∼ख) (नियम 4 · 2 को लगाकर (9) से)
(11) (घा v∼गि v ङ) (नियम 8 · 2 तथा 3 · 1 को लगाकर (10) से)
(12) ∼(घा v∼गि) ⊃ ङ (नियम 6 · 1 को लगाकर (11) से)
(13) (∼घा · गि) ⊃ ङ (नियम 5 · 1 को लगाकर (12) से)
(14) ङ (नियम 8 · 5 तथा 8 · 2 को लगाकर (7), (4) तथा (13) से)

3·6 परोक्ष आकारी प्रमाण विधि

इस विधि का आकारी प्रमाण विधि से वैसा ही सम्बन्ध है, जैसे, परोक्ष सत्यता-तालिका विधि का सत्यता-तालिका विधि से। जैसे परोक्ष सत्यता-तालिका विधि में हम युक्ति की वैधता या अवैधता का निर्णय यह देखकर करते हैं कि यदि निष्कर्ष को असत्य मान लें तो क्या किसी तार्किक नियम का उल्लंघन होता है, उसी प्रकार परोक्ष आकारी प्रमाण विधि में हम निष्कर्ष को असत्य मानकर चलते हैं और फिर आकारी-प्रमाण विधि का उपयोग करके देखते हैं कि किसी तार्किक नियम का उल्लंघन तो नहीं हो रहा है।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित युक्ति लें :

(1) का ⊃ (खा · गा)
(2) (खा v घा) ⊃ चा
(3) घा v का

/∴ चा

इसकी परोक्ष आकारी प्रमाण विधि द्वारा परीक्षा इस प्रकार होगी :

(4) ∼चा प० प्र० (परोक्ष प्रमाण)
(5) ∼(खा v घा) 2, 4 से नियम 8 · 14 द्वारा
(6) ∼खा · ∼घा 5 से नियम 5·2 द्वारा
(7) ∼घा · ∼खा 6 से नियम 3·1 द्वारा
(8) ∼घा 7 से नियम 8·2 द्वारा
(9) का 3,8 से नियम 8·15 द्वारा
(10) खा · गा 1,9 से नियम 8·5 द्वारा

(11)	खा	10 से नियम 8·2 द्वारा
(12)	∼खा	6 से नियम 8·2 द्वारा
(13)	खा · ∼खा	11,13 से नियम 8·2 द्वारा

उपर्युक्त में पग 13 स्पष्टतः व्याघात है। अतः मूल युक्ति की वैधता परोक्ष विधि से सिद्ध है।

3·7 सोपाधिक प्रमाण विधि

यदि हम किसी युक्ति की वैधता को सिद्ध करने के लिए आकारी प्रमाण की रचना नहीं कर सकते तो इस से युक्ति की अवैधता सिद्ध नहीं होती। क्योंकि सम्भव है कि वैधता सिद्ध करने के किसी नियम को हम न खोज पाए हों। यह आकारी प्रमाण विधि की एक त्रुटि है जो सत्यता-तालिका विधि और परोक्ष सत्यता-तालिका विधि में नहीं पाई जाती। फिर भी आकारी प्रमाण विधि का महत्त्व है क्योंकि यदि कोई युक्ति वैध है तो उसकी वैधता परीक्षा इस विधि द्वारा सत्यता-तालिका विधि से सरल पड़ती है।

सोपाधिक प्रमाण विधि आकारी प्रमाण विधि के समान है। दोनों में पग-पग चलकर प्रमाण की रचना की जाती है। परन्तु आकारी प्रमाण विधि के मुकाबले में सोपाधिक प्रमाण विधि अति सरल है। सोपाधिक प्रमाण विधि केवल उन्हीं युक्तियों पर लागू हो सकती है जिसका निष्कर्ष आपादनात्मक या उसके सर्वसम हो। यदि हम 'आ' आधार वाक्य या वाक्यों के लिए और 'पा ⊃ फा' आपादनात्मक निष्कर्ष के लिए मान लें, तो सोपाधिक प्रमाण का रूप निम्नलिखित होगा :

आ	आ	आ
∴ पा ⊃ फा	∴ ∼पा v फा	∴ ∼(पा · ∼फ)

ऐसी युक्ति में हम "पा" की कल्पना कर लें और सिद्ध करें कि "फा" 'आ' और 'पा' से निष्पादित होता है। हम 'I' और 'II' का प्रयोग इन युक्तियों के इन दोनों रूपों के लिए करें।

	I	II
	आ	आ
∴	पा ⊃ फा	पा
		∴ फा

युक्तिरूप (I) की वैधता, सोपाधिक प्रमाण की सहायता से युक्तिरूप (II) की वैधता स्थापित करके सिद्ध करते हैं। ऐसा करने का औचित्य यह स्मरण करने से स्पष्ट होगा कि प्रत्येक युक्ति वास्तव में एक आपादनात्मक प्रतिज्ञप्ति

है जिसमें आधार वाक्य आपादी हैं और निष्कर्ष आपाद्य—"आ ⊃ (पा ⊃ फा)' (युक्तिरूप I) और सममिति के नियम के अनुसार 'आ ⊃ (पा ⊃ फा) ≡ (आ · पा) ⊃ फा' (युक्तिरूप II)। चूँकि दोनों ही रूप सर्वसम हैं, इसलिए उनकी अनुरूप युक्तियाँ भी सर्वसम हैं।

हम निम्नलिखित प्रतीकृत युक्ति को लें :

(प ⊃ फ) ⊃ व

∴ ∼व ⊃ ∼फ

सोपाधिक प्रमाण द्वारा इसकी वैधता परीक्षण के लिए ऋकारी प्रमाण की तरह हम प्रथम चरण में लिखेंगे

1. (प ⊃ फ) ⊃ व / ∴ ∼व ≡ ∼फ

फिर हम पूर्वमान्यता के रूप में निष्कर्ष का आपादी '∼ व' अगले चरण में लिखेंगे और कारण के कालम में 'पू · मा' लिख देंगे। यथा :

1. (प ⊃ फ) ⊃ व	/ ∴ ∼व ⊃ ∼फ
2. ∼व	पू · मा.

और प्रमाण को निम्नलिखित प्रकार स्थापित करेंगे :

1. (प ⊃ फ) ⊃ व	/ ∴ ∼व ⊃ ∼फ
2. ∼व	पू० मा० ∴ ∼फ
3. ∼(प ⊃ फ)	1, 2 से
4. ∼∼(प · ∼फ)	3 से
5. प · ∼फ	4 से
6. ∼फ · प	5 से
7. ∼फ	6 से
8. ∼व ⊃ ∼फ	2, 7 से (प्र० प्र०)

आठवाँ चरण मूलयुक्ति के निष्कर्ष को केवल दोहराता है और बताता है कि चूँकि 1 से 7 मूलयुक्ति से सर्वसम युक्ति की वैधता सिद्ध करते हैं, मूलयुक्ति का निष्कर्ष तदनुसार उससे निष्पादित होता है।

मान लीजिए कि मूलयुक्ति का निष्कर्ष '∼व ⊃ ∼फ' के बजाय 'व ∨ ∼फ' है। ऐसी दशा में 8 से '∴' हटा दिया जाता और प्रमाण को अन्य सूत्रों का उल्लेख करके 'व ∨ ∼फ' पर पहुँचाया जाता।

सोपाधिक प्रमाण की सरलता का अनुमान उपर्युक्त युक्ति के आकारी

प्रमाण के साथ तुलना करने पर लगाया जा सकता है। उपर्युक्त युक्ति का आकारी प्रमाण इस प्रकार होगा :

1. (प⊃फ) ⊃ व   /∴ ∼व ⊃ ∼फ
2. ∼व ⊃ ∼(प ⊃ फ)   1 से
3. ∼व ⊃ ∼∼(प · ∼फ)   2 से
4. ∼व ⊃ (प · ∼फ)   3 से
5. ∼[∼व · ∼(प · ∼फ)]   4 से
6. व ∨ (प · ∼ फ)   5 से
7. (व ∨ प) · (व ∨ ∼फ)   6 से
8. (व ∨ ∼फ) · (व ∨ फ)   7 से
9. व ∨ ∼फ   8 से
10. ∼(∼व · ∼∼फ)   9 से
11. ∴ ∼व ⊃ ∼फ   10 से

आकारी प्रमाण न केवल सोपाधिक प्रमाण से लम्बा, बल्कि रचना करने में कठिन भी है। इसके अतिरिक्त सोपाधिक प्रमाण कुछ युक्तियों को स्थापित करती हैं जिनकी वैधता आकारी प्रमाण से नहीं हो पाती, यदि सीमित सूत्र ही प्रयोग किए जाएं। यथा :

1. प ⊃ फ   / ∴ प ⊃ (प · फ)
2. प   पू. मा. / ∴ (प · फ)
3. फ   1, 2 से
4. प · फ   2, 3 से
5. ∴ प ⊃ (प · फ)   2–4 प्र. प्र.

हम दूसरी प्रतीकृत युक्ति लें जिसका सोपाधिक प्रमाण इस प्रकार होगा :

1. प ⊃ (∼फ ⊃ व)
2. ∼फ ⊃ (व ⊃ म)   / ∴ प ⊃ (∼फ ⊃ म)
3. प   पू० मा० / ∴ ∼फ ⊃ म
4. ∼फ   पू० मा० / ∴ म
5. व ⊃ म   2, 4 से
6. ∼फ ⊃ व   1, 3 से
7. ∼फ ⊃ व   6, 5 से

8. म 7, 4 से
9. फ ⊃ म 4, 8 से (प्र० प्र०)
10. ∴ प ⊃ (∼फ ⊃ म) 3, 9 से (प्र० प्र०)

अभ्यास

(अ) निम्नलिखित में से आधार-वाक्यों के कौन कुलक असंगत हैं? यदि कोई कुलक संगत है तो उसका व्याघात प्राप्त कीजिए :

1. प ⊃ फ
   फ ≡ ब
   ब ∨ भ ≡ ∼फ
2. ∼(∼फ ∨ प)
   प ∨ ∼ब
   फ ⊃ ब
3. प ⊃ फ
   फ ⊃ ब
   भ ⊃ ∼ब
   प · भ
4. यदि अनुबन्ध वैध है तो हरी उत्तरदायी है। यदि हरी उत्तरदायी है तो वह दिवालिया हो जायगा। या हरी दिवालिया हो जायगा या बैंक उसको उधार धन देगी। पर बैंक उसको निश्चय ही उधार धन नहीं देगी॥
5. यदि सुल्ताना ने हत्या की तो वह मृतक के कमरे में था और वह ग्यारह बजे के पहले वापस नहीं गया। वस्तुतः वह मृतक के कमरे में था। यदि वह ग्यारह बजे के पहले गया तो पार्षद् ने उसे देखा। परन्तु ऐसी बात नहीं है कि पार्षद् ने उसे देखा या उसने हत्या की॥
6. यदि चार प्रथम श्रेणियाँ पर्याप्त हैं तो प्रत्याशी पद पाने में सफल होगा। या तो चयन समिति के तीन सदस्य समर्थन करेंगे, या प्रत्याशी पद पाने में सफल न होगा। साथ ही ऐसी बात नहीं है कि चार प्रथम श्रेणियाँ पर्याप्त हैं और चयन समिति के तीन सदस्य समर्थन करेंगे। इसलिए चार प्रथम श्रेणियाँ पर्याप्त नहीं हैं॥

(क) निम्नलिखित युक्तियों का सत्यता-तालिका विधि द्वारा परीक्षण कीजिए :

1. दार्शनिक नीत्शे या तो प्रतिभाशाली था या विकृत मस्तिष्क (पागल)। चूंकि वह पागलपन में मरा, वह प्रतिभाशाली नहीं था ।।
2. ग्रीक दार्शनिक ने तर्क किया : यदि कोई पिण्ड गतिमान होता है तो या उस स्थान पर गतिमान होता है जहाँ पर वह है या जहाँ पर वह नहीं है। परन्तु न तो वह गतिमान हो सकता है जहाँ पर वह है न जहाँ पर वह नहीं है। अतः कोई पिण्ड गतिमान नहीं हो सकता, और गति असम्भव है ।।
3. अस्तित्ववादी कीर्केगार्ड ने माना कि यह असम्भव है कि कोई विश्वास अकूट हो और असंगत हो। यह विश्वास वास्तव में असंगत है, और इसलिए अकूट है ।।
4. सार्त्र का कहना है : हम दोनों एक ही समय पर एक-दूसरे के लिए कर्म नहीं हो सकते। क्योंकि जब वह मुझे कर्म के रूप में देखता है, और मैं उसकी दुनिया में खिच जाता हूँ, तो मैं उसे कर्त्ता के रूप में अनुभव करता हूँ ।।
5. 'मैं जानता हूँ कि मुझे पीड़ा है' वाक्य सार्थक है केवल यदि। 'मुझे संदेह है' कि मुझे पीड़ा है' वाक्य भी सार्थक है। परवर्ती वाक्य सार्थक नहीं है। इसलिए पूर्ववर्ती भी सार्थक नहीं है।
6. यदि ईसाइयों का भगवान सब मनुष्यों से प्रेम करता है तो वह केवल एक से प्रेम नहीं करता। और यदि वह केवल एक मनुष्य से प्रेम करता है, तो वह सब मनुष्यों से प्रेम नहीं करता। इसलिए वह सब मनुष्यों से प्रेम नहीं करता ।।
7. 'मैं जानता हूँ कि मुझे पीड़ा है' वाक्य में 'मैं जानता हूँ' शब्द कोई उद्देश्य नहीं सिद्ध करते। यदि ऐसा है तो यह कहने में कि मैं "प्रत्यक्षतः जानता हूँ कि मुझे पीड़ा है' में कोई त्रुटि है। परन्तु यह कहना कि आप ''अप्रत्यक्ष रूप से जानते हैं कि मैं पीड़ा में हूँ सही होगा केवल उस दशा में जबकि यह कहना सही होगा कि मैं प्रत्यक्ष रूप से जानता हूँ कि मैं पीड़ा में हूँ। अतः यह कहने में कि आप अप्रत्यक्ष रूप से जानते हैं कि मैं पीड़ा में हूँ कहने में कुछ त्रुटि है।

8. शरीर स्वभावत: खण्डनीय है। यदि ऐसा है और यदि मन और शरीर एक और समरूप हैं, तो मन भी खण्डनीय है। पर मन बिल्कुल अखण्डनीय है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि मन और शरीर एक ही नहीं हैं ।।
9. यदि मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ तो यदि उसका अस्तित्व है तो मैं जीतता हूँ और यदि उसका अस्तित्व नहीं है तो (कम से कम) मैं हारता नहीं हूँ। यदि, इसके विपरीत, मैं विश्वास नहीं करता तो यदि ईश्वर का अस्तित्व है तो मैं हारता हूँ और यदि उसका अस्तित्व नहीं है तो मुझे लाभ नहीं होता। इससे यह परिणाम निकलता है कि यदि मैं विश्वास करता हूँ तो या तो मुझे लाभ होगा या (कम से कम) हानि नहीं होगी, जबकि यदि मैं नहीं विश्वास करता तो या तो मैं हारूँगा या (अधिक से अधिक) लाभ पाने से वंचित हूँगा ।।
10. यदि कठोर नियतिवाद, कोमल नियतिवाद या अनियतिवाद इन तीनों में से कोई भी मत सही है, तो बाकी दोनों भ्रान्तिपूर्ण हैं। अत: तीन मतों में से एक सही है और बाकी दो गलत हैं।
11. यदि 'पेन्सिल' शब्द पेन्सिलों के वर्ग को निर्दिष्ट करता होता, तो हम यह कहते कि 'पेन्सिल बहुत बड़ी है' स्थापित कर सकते कि पेन्सिलों का वर्ग बहुत बड़ा है। पर हम यह स्थापित नहीं कर सकते। अत: 'पेन्सिल' शब्द पेन्सिलों के वर्ग को नहीं निर्दिष्ट करता ।।

(ख) यदि 'प', 'फ' और 'ब' तीन आणविक प्रतिज्ञप्तियां हैं, तो सत्यता-तालिका विधि द्वारा तय कीजिए की निम्नलिखित व्यंजकों में से कौन पुनरुक्तियां हैं :

1. प v फ ⊃ फ v प
2. प ⊃ (प v फ) v ब
3. [(प ⊃ फ) ≡ फ] ⊃ प
4. प ⊃ [फ ⊃ (फ ⊃ प)]
5. [(प v (∼प · फ)] v (∼प · ∼ फ)

(ग) साधारण बोलचाल की भाषा के आधार पर निम्नलिखित वाक्यीय योजियों की सत्यता-तालिका निर्माण कीजिए :

1. दोनों 'प' तथा 'फ' नहीं।
2. न तो 'प' न 'फ'।

(घ) निम्नलिखित युक्तियों का परीक्षण परोक्ष सत्यता-तालिका विधि द्वारा कीजिए :

1. प ⊃ (∼प ⊃ फ)
2. (प ⊃ फ) ⊃ (फ ⊃ प)
3. प · फ ⊃ प v फ
4. प · फ ⊃ (प ≡ फ v ब)
5. [प · फ ⊃ (प · ∼प ⊃ फ v ∼ फ] · (फ ⊃ फ)
6. (प ⊃ फ) ≡ (फ ⊃ प)

(च) निम्नलिखित युक्तियों का परीक्षण संयोजी प्रसामान्य आकार विधि द्वारा कीजिए :

1. शोपेनहावर का कहना है : यदि मनुष्य में अभिलाषाएँ हैं तो वह कुण्ठित है और इसीलिए वह दुखित होता है। यदि मनुष्य में अभिलाषाएँ नहीं हैं तो वह ऊबता है और इसीलिए दुखित होत है। दोनों में से प्रत्येक दशा में वह दुखित होता है ।।
2. मिल का कहना है कि अभिमत की अभिव्यक्ति का दमन करके मानव जाति एक लाभ से हाथ धोती है। क्योंकि यदि अभिमत सही है, तो वह भ्रान्ति को सत्य से बदलने का अवसर खोती है; यदि अभिमत भ्रान्तिपूर्ण है तो वह भ्रान्ति से सत्य की मुठभेड़ होने से सत्य का अधिक स्पष्ट रूप पाने के लाभ से वंचित होती है ।।
3. लाइबनित्स ने लिखा है : यदि आकाश अनपेक्ष होता, तो ऐसी कोई घटना घटित हो सकती जिसके लिए कोई पर्याप्त हेतु होना असम्भव है। परन्तु किसी घटना के घटित होने के लिए पर्याप्त हेतु होना ही चाहिए। अतः आकाश अनपेक्ष नहीं है ।।
4. सार्त्र का कहना है : हम दूसरे के प्रति सुसंगत दृष्टिकोण रख सकते हैं केवल यदि हम एक ही समय पर कर्त्ता और कर्म के रूप में प्रदर्शित होते जोकि सिद्धान्ततः असम्भव है। अतः दूसरे के प्रति सुसंगत दृष्टिकोण नहीं रख सकते।
5. शांतिवादी का तर्क है—यदि युद्ध के लिए बुलाए जाने पर मैं युद्ध के लिए जाता हूँ तो मैं अपने सिद्धान्तों का उल्लंघन करता हूँ। और यदि मैं नहीं जाता हूँ तो मैं बंदी बनाया जाऊँगा, मेरे परिवार का भरण-पोषण नहीं होगा और इस प्रकार मेरे सिद्धान्तों का उल्लंघन होगा। प्रत्येक दशा में मेरे सिद्धान्तों का उल्लंघन होगा ।।

6. अलबर्ट श्वाइटज़र का कहना है—केवल यदि हमारे पास तर्क सिद्ध नैतिक आदर्श हैं तो हमारी संस्कृति सच्ची है। पर चूंकि हमारे पास तर्क सिद्ध नैतिक आदर्श नहीं हैं, हमारी संस्कृति सच्ची नहीं है ॥

7. सुकरात ने तर्क किया : यदि न्याय सत्य बोलता होता और अपने ऋणों को चुकाता होता, तो हरेक को सत्य बोलना चाहिए और पागल को हथियार वापस कर देना चाहिए। परन्तु यदि ऐसा करना अमान्य है तो न्याय सत्य बोलना और अपने ऋणों को चुकाना अमान्य है ॥

(घ) निम्नलिखित में से प्रत्येक सरलतम समान प्रसामान्य रूप बताइए :

1. प ∨ (फ · ∼प)
2. फ · (प ∨ फ)
3. (प ∨ फ) · (फ ∨ ब) · (प ∨ ब) · ब
4. (प · फ) ∨ (फ · ब) ∨ (प · ब) ∨ ब
5. प · {प ⊃ [फ · (फ ⊃ ब)]}
6. प ∨ {∼प ⊃ [फ ∨ (∼फ ⊃ ब)]}
7. (प ∨ फ) ⊃ [(प ⊃ फ) ⊃ ∼(फ ∨ ∼फ)]
8. (प · फ) ⊃ [(प ⊃ फ) ⊃ ∼(प · ∼फ)]

(त) निम्नलिखित में से प्रत्येक प्रदत्त युक्ति का आकारिक प्रमाण है। प्रत्येक पाद जोकि आधार वाक्य नहीं है, में प्रयुक्त नियम को बताइए।

1. 1. का ⊃ खा
   2. ∼(खा ∨ गा) / ∴ ∼का
   3. ∼खा · ∼गा
   4. ∼खा
   5. ∼का

2. 1. (चा ⊃ छा) · (जा ⊃ छा)
   2. झा ⊃ (चा ∨ जा)
   3. जा / ∴ छा
   4. चा ∨ जा
   5. छा ∨ छा
   6. छा

3. 1. (टा ⊃ ठा) · (डा ढा)
   2. (ठा ⊃ णा) · (ढा ⊃ णा)

3. पा ⊃ ∼या
4. टा ⊃ डा /∴ ∼टा
5. ∼पा v ∼या
6. ∼ठा v ढा
7. ∼टा v ∼डा
8. टा ⊃ ∼डा
9. ∼डा ⊃ ∼टा
10. टा ⊃ ∼टा
11. ∼टा v ∼टा
12. ∼टा

4\. 1. (का v खा) ⊃ (गा · घा)
2. (घा v ङा) ⊃ चा /∴ का ⊃ चा
3. ∼(का v खा) v (गा · घा)
4. [∼(का v खा) v गा] · [∼(का v खा) v घा]
5. [∼(का v खा) v घा] · [∼(का v खा) v गा]
6. ∼(का v खा) v घा
7. [∼(का v खा) v घा v ङा
8. ∼(का v खा) v (घा v ङा)
9. (का v खा) ⊃ (घा v ङा)
10. (का v खा) ⊃ चा
11. ∼चा ⊃ ∼(का v खा)
12. ∼∼चा v ∼(का v खा)
13. ∼∼चा v (∼का · ∼खा)
14. (∼∼चा v ∼का) · (∼∼चा v ∼खा)
15. ∼∼चा v ∼का
16. ∼चा ⊃ ∼का
17. का ⊃ चा

5\. 1. ठा ⊃ (टा ⊃ डा)
2. (टा · डा) ⊃ (ठा · ढा)
3. टा /∴ (∼ठा v ∼टा) ⊃ (∼ठा · ∼ढा)
4. (ठा · टा) ⊃ डा

5. (ट · ठ) ⊃ ड
6. ट ⊃ (ठ ⊃ ड)
7. ठ ⊃ ड
8. ट ⊃ [ड ⊃ (ठ · ड)]
9. ड ⊃ (ठ · ड)
10. ∼ड ∨ (ट · ड)
11. (∼ड ∨ ठ) · (∼ड ∨ ड)
12. ∼ड ∨ ठ
13. ड ⊃ ठ
14. (ठ ⊃ ड) · (ड ⊃ ठ)
15. ठ ≡ ड
16. (ठ · ड) ∨ (∼ठ · ∼ड)
17. ∼∼(ठ · ड) ∨ (∼ठ · ∼ड)
18. ∼(ठ · ड) ⊃ (∼ठ · ∼ड)
19. (∼ठ ∨ ∼ड) ⊃ (∼ठ · ∼ड)

अभ्यास

(ख) निम्नलिखित युक्तियों के आकारिक प्रमाण का निर्माण कीजिए :

1. कोई राजनीतिक नेता ईमानदार नहीं होता। भुट्टो राजनीतिक नेता है। इसलिए भुट्टो ईमानदार नहीं है।
2. सभी अभ्यर्थियों को धोखा हुआ। कुछ अभ्यर्थी चालाक थे। इसलिए कुछ चालाक व्यक्तियों को धोखा हुआ।
3. कोई दार्शनिक व्यवहारकुशल नहीं होता। कुछ शिक्षक व्यवहार-कुशल हैं। अतः कुछ शिक्षक दार्शनिक नहीं हैं।
4. सभी उपद्रवियों को जेल भेजा गया। कुछ उपद्रवी मारे नहीं गए। अतः कुछ लोग जो जेल भेजे गए मारे नहीं गए।

(ग) निम्नलिखित युक्तियों की आकारिक प्रमाण द्वारा परीक्षा कीजिए कि वह वैध है या अवैध—

1. सभी युक्तियां वैध नहीं होतीं। कोई भी ऐसी युक्तियां नहीं हैं जो कि पक्की तथा वैध दोनों ही हों। अतः सब युक्तियां पक्की नहीं होतीं।।
2. कोई भी दार्शनिक ऐसा नहीं है जो बुद्धिमान न हो। कुछ दार्शनिक

सहजबुद्धि में क्षीण हैं। अतः कुछ दार्शनिक जोकि बुद्धिमान हैं सहजबुद्धि में क्षीण हैं।

3. कोई भी अस्तित्ववादी किसी भाववादी को पसन्द नहीं करता। वियना-वृत्त के सभी सदस्य भाववादी हैं। अतः कोई अस्तित्ववादी किसी वियना-वृत के सदस्य को पसंद नहीं करता ॥
4. सभी विश्लेपी कथन प्राक्-आनुभविक हैं। इससे सिद्ध है कि कोई कथन प्राक्-आनुभविक है यदि और केवल यदि वह विश्लेपी है, क्योंकि प्राक्-आनुभविक कथनों के अतिरिक्त कोई कथन विश्लेपी नहीं है ॥
5. ऐसी निगमनात्मक युक्तियाँ हैं जो सामान्य से विशेप की ओर नहीं जाती। इसलिए यह असत्य है कि सभी निगमनात्मक युक्तियाँ सामान्य से विशेप की ओर जाती हैं ॥
6. कुछ वैध निगमनात्मक युक्तियाँ, जिनके निष्कर्प सत्य हैं, परन्तु आधार वाक्य असत्य, वैध होती हैं। इसलिए ऐसी बात नहीं है कि किसी वैध निगमनात्मक युक्ति के आधार वाक्यों की सत्यता उसके निष्कर्प की सत्यता के लिए आवश्यक दशा है ॥
7. कुछ दार्शनिक प्रतिज्ञप्तियाँ (1) सार्थक (2) अन-आनुभविक तथा (3) विपयवस्तुहीन होती हैं। सभी विश्लेपी प्रतिज्ञप्तियाँ विपय-वस्तुहीन होती हैं। अतः यह धारणा कि सार्थक प्रतिज्ञप्तियों को विश्लेपी और आनुभविक दो व्यावर्तक तथा सम्पूर्ण भागों में विभाजित किया जा सकता है, असत्य है ॥
8. सत्य और असत्य वार्ता के गुण हैं, वस्तुओं के नहीं। और जहाँ वार्ता नहीं है वहाँ न तो सत्यता है न असत्यता ॥
9. ऐसे दार्शनिक अनुमान पाए जाते हैं जोकि तर्क के अन्तर्गत नहीं है, परन्तु महत्त्वपूर्ण हैं यद्यपि वह आगमनात्मक भी नहीं हैं। सभी दार्शनिक अनुमान गणित, विधिशास्त्र और धर्मशास्त्र के बाहर हैं। इससे इस धारणा की असत्यता स्थापित होती है कि सभी महत्त्वपूर्ण अनुमान जो तर्कशास्त्र, गणितशास्त्र, विधिशास्त्र और धर्मशास्त्र के बाहर हैं आगमनात्मक हैं ॥
10. यदि अनुभववाद सही है तो कोई भी, प्रतिज्ञप्ति जिसकी विपय-वस्तु वस्तुतः है, अनिवार्य नहीं हो सकती। तदनुसार यदि अनुभववाद

सही है तो या सभी गणितशास्त्रीय प्रतिज्ञप्तियों में अनिवार्यता का अभाव है या उन सभी में वस्तुतः विषय-वस्तु की कमी है।

11. यदि हर शब्द नाम है, तो हर वाक्य जिसमें एक से अधिक शब्द हैं एक सूची है। सूचियों का सत्यता मूल्य नहीं होता। कुछ वाक्यों का सत्यता मूल्य होता है। इसलिए कुछ शब्द नाम नहीं है ।।
12. हर असत्य वाक्य या (1) दावा करता है कि ऐसी बात नहीं है या (2) इंकार करता है कि ऐसी बात है। कोई वाक्य जो पूर्ववर्ती कर्म करता है मानता है कि कोई बात ऐसी है, और कोई वाक्य जो अनुवर्ती कर्म करता है इन्कार करता है कि कोई बात ऐसी है। कोई वाक्य जोकि कोई बात ऐसी है को मानता है या इन्कारता है, अर्थ-हीन नहीं है। अतः कोई वाक्य असत्य और अर्थहीन दोनों एक साथ नहीं हैं ।।

(घ) निम्नलिखित में से प्रत्येक युक्ति के आकारिक प्रमाण और अप्रत्यक्ष प्रमाण का निर्माण कीजिए और दोनों की लम्बाई की तुलना कीजिए :

1. (का · खा) ⊃ (गा · घा), गा ⊃ ∼घा ∴ ∼का ∨ ∼खा
2. (चा ⊃ छा) · (जा ⊃ झा), (छा ⊃ ञा) · (झा ⊃ ता), चा · जा ∴ ञा · ता
3. (धा ∨ दा) ⊃ (धा · ना), (धा ∨ पा) ⊃ (ना ⊃ ∼वा) ∴ ∼धा
4. फा ⊃ (वा ⊃ भा), फा ⊃ वा, ∼मा ⊃ (या ∨ फा) ∴ मा ∨ भा
5. (∼रा ∨ ला) ⊃ (वा · क्षा), (वा ∨ सा) (क्षा ⊃ रा) ∴ रा

4

विधेयों का न्याय

4·1 अनुमान के कुछ नए रूप

प्रतिज्ञप्तियों के न्याय में वर्णित निर्णय विधियाँ सभी युक्तियों की वैधता का निर्णय करने में सदा सफल नहीं होती हैं। उदाहरण के लिए हम निम्न युक्तियाँ लें—

(1) दर्शन परिषद् के सब सदस्य वार्षिक चन्दा देते हैं। सब सदस्य जोकि वार्षिक चन्दा देते हैं परिषद् के प्रकाशन विना मूल्य पाते हैं। अतएव परिषद् के सब सदस्य परिषद् के प्रकाशन विना मूल्य पाते हैं।।

(2) सब सनातन धर्मी छूत-पाक के कट्टर समर्थक होते हैं। कोई भी छूत-पाक का कट्टर समर्थक सच्चा समाज सेवक नहीं हो सकता। इसलिए कोई भी सनातन धर्मी सच्चा समाज सेवक नहीं हो सकता।।

(3) विश्वविद्यालय के सब विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का उपयोग करने का अधिकार है। कुछ विश्वविद्यालय के विद्यार्थी पढ़ने लिखने में रुचि नहीं रखते। अतएव कुछ लोग जिन्हें विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के उपयोग करने का अधिकार है, पढ़ने लिखने में रुचि नहीं रखते।।

इन युक्तियों की वैधता किसी अर्थ में 'सब', 'कुछ', 'कोई नहीं' और इनसे मिलते-जुलते शब्दों पर निर्भर है। तथा इस पर भी निर्भर है कि कुछ वर्णनात्मक पदबन्ध जैसे 'दर्शन परिषद् के सदस्य', 'वार्षिक चन्दा', 'सनातन धर्मी' आधार प्रतिज्ञप्तियों और निष्कर्ष को जोड़ते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस प्रकार युक्तियाँ पुष्ट नहीं होंगी, जबतक कि आधार प्रतिज्ञप्तियों और निष्कर्ष की समेकित कुछ दशाओं को सन्तुष्ट नहीं किया जाता। इसलिए इन दशाओं को ठीक रूप में निर्दिष्ट करना आवश्यक है और इस प्रकार की युक्तियों की पुष्टता के परीक्षण करने की एक यन्त्रवत् विधि को प्राप्त करना वांछित है।

इस विधि का साम्य उन निर्णय विधियों से होगा जिनका प्रतिज्ञप्तियों के न्याय में उल्लेख किया जा चुका है।

युक्तियों के इस नवीन रूप की विशिष्टता को, हम एक पुरानी प्रकार की युक्ति को नवीन रूप में रखकर, और दोनों रूपों की तुलना करके समझ सकते हैं। पहले हम वह रूप लिखें जिसका कि अध्ययन किया जा चुका है और फिर नवीन रूप को।

(4) यदि वायुयान की नौकरी विपद्पूर्ण है तो उसमें वेतन अधिक होना चाहिए। वायुयान की नौकरी अधिक विपद्पूर्ण है इसलिए वायुयान की नौकरी में अधिक वेतन मिलना चाहिए ॥

(5) सब विपद्पूर्ण नौकरियों में वेतन अधिक होना चाहिए। वायुयान की नौकरी विपद्पूर्ण है। इसलिए वायुयान की नौकरी में वेतन अधिक मिलना चाहिए ॥

यद्यपि (4) और (5) युक्तियों का विषय एक ही है और उनका निष्कर्ष भी एक ही है फिर भी तर्कशास्त्र की दृष्टि में दोनों के रूप में मूल भेद है। युक्ति (4) में हम प्रतिज्ञप्तियों की रचना 'वायुयान की नौकरी विपद्जनक है' तथा 'वायुयान की नौकरी में वेतन अधिक होना चाहिए' पर ध्यान न दें तो भी हम युक्ति की पुष्टि केवल तार्किक नियम

(6) $[(प \supset फ) \cdot प] \supset फ$

को देखकर कर सकते हैं, परन्तु युक्ति (5) में ऐसा नहीं कर सकते। यदि हम वर्णनात्मक पदबन्धों या वाक्यांशों को जोकि प्रतिज्ञप्तियों में प्रयुक्त हुए हैं, पर ध्यान न दें तो युक्ति की तार्किक रचना हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :

(7) $(प \cdot फ) \supset ब$

स्पष्टतः यह वैध सूत्र नहीं है। अर्थात् यह युक्ति केवल इस तार्किक रूप में होने के कारण पुष्ट नहीं है और इसलिए हमको प्रतिज्ञप्तियों की आन्तरिक रचना पर ध्यान देना आवश्यक सिद्ध होता है।

प्रतिज्ञप्तियों के न्याय में निष्कर्ष केवल प्रतिज्ञप्तियों के बीच के सम्बन्ध का अध्ययन करके प्राप्त किया जाता है। वहाँ प्रतिज्ञप्ति की रचना का अध्ययन नहीं किया जाता। परन्तु अब हमें प्रतिज्ञप्ति की रचना का अध्ययन करना होगा। और चूंकि युक्तियों के नवीन रूप में अनुमान का वैध या अवैध होना वर्णनात्मक पदबन्धों अर्थात् विधेय के ऊपर निर्भर प्रतीत होता है। इसलिए इस अध्ययन को 'विधेयों के न्याय' की संज्ञा दी जाती है। यह अध्ययन सरल

तथा जटिल दोनों प्रकार का होता है। यहाँ पर हम केवल सरल विधेयों के न्याय का विवेचन करेंगे और उच्चतर विधेयों के न्याय को क्लिष्टता के कारण स्थगित कर देंगे। सरल विधेय न्याय का प्रारम्भ भी हम सरलतम प्रतिज्ञप्तियों से प्रारम्भ करेंगे।

4·2 एकव्यापी प्रतिज्ञप्ति

प्रतिज्ञप्तियों में सबसे सरल एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियाँ हैं। इनकी परिभाषा हम नकारात्मक रूप में इस प्रकार कर सकते हैं कि इनमें कोई तार्किक अचर नहीं होते और यह 'सब', 'कोई नहीं', 'कुछ' तथा इनके समानान्तर शब्दों से मुक्त होती हैं। उदाहरण के लिए हम यह प्रतिज्ञप्ति लें :

(1) राम राजा हैं।

(2) राम लक्ष्मण से बड़े हैं।

(3) राम और लक्ष्मण के बीच में सीता चलती हैं।

इन प्रतिज्ञप्तियों का विश्लेषण करने पर हम पाएंगे कि प्रत्येक कुछ पदों से बनी हैं। पहली प्रतिज्ञप्ति में दो पद हैं—'राम' और 'राजा'; दूसरी प्रतिज्ञप्ति में तीन पद हैं—'राम', 'लक्ष्मण' और 'बड़े'; तीसरी प्रतिज्ञप्ति में चार पद हैं—'राम', 'सीता', 'लक्ष्मण' तथा बीच में चलना'। हम ऐसी प्रतिज्ञप्तियों की भी कल्पना कर सकते हैं जिनमें चार से अधिक पद हों यद्यपि व्यवहार में ऐसी प्रतिज्ञप्तियाँ बहुत कम प्रयुक्त होती हैं। उपर्युक्त तीनों प्रतिज्ञप्तियों में (1) सरलतम है, क्योंकि उसमें केवल दो पद हैं। यहाँ पर हम केवल ऐसी दो पद वाली प्रतिज्ञप्तियों का विश्लेषण करेंगे। तदर्थ हम निम्न-लिखित दो पद वाली प्रतिज्ञप्तियाँ लें :

(4) राम धनुर्धारी हैं।

(5) लक्ष्मण धनुर्धारी हैं।

(6) अर्जुन धनुर्धारी हैं।

(7) कर्ण धनुर्धारी हैं।

इनमें 'धनुर्धारी हैं' विधेय प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति में पाया जाता है। इस विधेय के लिए यदि हम 'ध' का प्रयोग करें तो प्रतिज्ञप्तियों को इस प्रकार लिख सकते हैं—

(4) राम ध।

(5) लक्ष्मण ध।

(6) अर्जुन घ।

(7) कर्ण घ।

हम व्यक्तियों के स्थान पर भी अक्षरों का प्रयोग कर सकते हैं। तदर्थ हम 'क' वर्ग के अक्षरों का क्रमशः प्रयोग करके प्रतिज्ञप्तियों को फिर से लिख सकते हैं :

(4') क घ

(5') ख घ

(6) ग घ

(7) घ घ

इन व्यक्तियों के स्थान पर और भी व्यक्तियों के नाम रखकर भी सत्य प्रतिज्ञप्तियाँ मिल सकती हैं। अर्थात् और व्यक्तियों जैसे भीष्म, द्रोणाचार्य पर भी यह विधेय लागू हो सकता है। इसलिए हम गणितशास्त्र में प्रचलित विधि का उपयोग कर सकते हैं और व्यक्तियों को 'क' 'ख' 'ग' द्वारा सम्बोधित करने के लिए 'य' का प्रयोग कर सकते हैं। इस 'य' को हम 'व्यक्तीय चर' की संज्ञा दे सकते हैं, क्योंकि यह चर व्यक्तियों का मूल्य ग्रहण करता है। हम कह सकते हैं कि :

य धनुर्धारी है,

अथवा

य घ है।

उपर्युक्त सूत्र में 'य' व्यक्तीय चर है और 'ध' विधेय अचर।

अब हम कुछ और दो पद वाली एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियों को लें :

(8) पार्वती सती हैं।

(9) सावित्री सती हैं।

(10) सीता सती हैं।

(11) अनुसूया सती हैं।

इनकी रचना भी पहली प्रतिज्ञप्तियों की भाँति व्यक्तीय चर तथा विधेय अचर के द्वारा अभिव्यक्त की जा सकती है। यहाँ पर विधेय अचर 'सती हैं' है। व्यक्तियों के लिए हम 'ल' और विधेय के लिए 'स' का प्रयोग करके सूत्र बना सकते हैं—

ल स

हम नियम मान लें कि व्यक्तीय चरों के लिए 'य' 'र' 'ल' का प्रयोग

करेंगे और विधेय अचरों के लिए 'त' 'थ' 'द'। इन अक्षरों की सहायता से हम किसी भी दो पद वाली एकव्यापी प्रतिज्ञप्ति की रचना बना सकते हैं। इनमें व्यक्तीय चर के स्थान पर व्यक्ति और विधेय अचर के स्थान पर व्यक्ति का वर्णन मिलता है।

यहाँ पर व्यक्तिवाचक संज्ञा और एकव्यापी के भेद को बता देना अभीष्ट है। व्यक्तिवाचक संज्ञा जैसाकि नाम से स्पष्ट है केवल एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होती है। परन्तु हम ऐसा वर्णन भी दे सकते हैं जोकि एक ही व्यक्ति पर लागू हो। यद्यपि व्यक्तिवाचक संज्ञा तथा उपर्युक्त प्रकार का वर्णन दोनों एक ही व्यक्ति पर लागू होता है फिर भी उपर्युक्त प्रकार का वर्णन व्यक्तिवाचक संज्ञा नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए 'भारत के राष्ट्रपिता' या 'गाँधी जी' दोनों एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होते हैं फिर भी 'गाँधी जी' व्यक्तिवाचक संज्ञा है और 'भारत के राष्ट्रपिता' नहीं। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं तथा अनूठे वर्णनात्मक प्रतिज्ञप्तियों के भेद को हम और भी स्पष्ट कर सकते हैं यदि हम 'भारत के वर्तमान सम्राट्' पदवर्णन पर विचार करें। यह पदवर्णन किसी पर लागू नहीं होता जबकि व्यक्तिवाचक संज्ञा किसी न किसी व्यक्ति को अवश्य निर्देशित करती है।

व्यक्तिवाचक संज्ञा तथा वर्णन का भेद और भी अधिक समझ में आ जाएगा यदि हम आगामी उदाहरण पर विचार करें। मान लीजिए किसी सिनेमा या सर्कस के विज्ञापन में हम पढ़ें कि 'आइए इस चित्र में प्रसिद्ध व प्रशंसित पालुम्बो को देखिए' तो हम इतना तो समझ जाएंगे कि 'पालुम्बो' एक व्यक्तिवाचक संज्ञा है। परन्तु इतना जानने से हमें इसका कोई ज्ञान न होगा कि 'पालुम्बो' पुरुष, स्त्री, घोड़ा, कुत्ता या बन्दर है। सिनेमा या सर्कस के सन्दर्भ के परे अन्य सन्दर्भों में 'पालुम्बो' नदी, पर्वत, नगर तथा अन्य अगणित वस्तुओं को इंगित कर सकता है। अर्थात् व्यक्तिवाचक संज्ञा जिस वस्तु की वह वाचक है, उसके स्वरूप का कुछ भी पता नहीं लगता।

4·3 प्रतिज्ञप्तियों का सामान्यीकरण : अंशव्यापी परिमाणक

एकव्यापी-प्रतिज्ञप्ति की विशेषता यह है कि उसमें मात्रा बताने वाला कोई शब्द नहीं पाया जाता है। मात्रा बताने वाले शब्द मुख्यतः तीन प्रकार के हैं : 'कुछ', 'सब', 'कोई नहीं।' परन्तु ऐसी प्रतिज्ञप्तियाँ भी विद्यमान हैं जिनमें मात्रासूचक शब्द परोक्ष या अपरोक्ष रूप में आते हैं। ऐसी प्रतिज्ञप्तियों की रचना का विश्लेषण क्या है? यह विश्लेषण कैसे होगा? ये प्रश्न

सम्भवत: उठते हैं । इन प्रश्नों का उत्तर हम कुछ मात्रा-सूत्रक प्रतिज्ञप्तियों का विश्लेषण करके देंगे ।

निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियों पर विचार कीजिए :

(1) अप्सराएँ होती हैं ।

(2) घोड़े होते हैं ।

ये प्रतिज्ञप्तिताँ एकव्यापी नहीं हैं, क्योंकि इनमें कोई व्यक्तिवाचक संज्ञा नहीं प्रयुक्त है और क्योंकि 'होते हैं' कोई विधेय नहीं कहा जा सकता । यह कहना कि 'घोड़े होते हैं' घोड़े किस प्रकार की वस्तुएँ हैं या कैसे हैं इनके बारे में कुछ भी नहीं बताता । मान लीजिए कि हमारे सामने उन प्रतिज्ञप्तियों के स्थान पर ये प्रतिज्ञप्तियाँ हैं :

(3) कोई वस्तु है जोकि अप्सरा है ।

(4) कोई वस्तु है जोकि घोड़ा है ।

स्पष्टत: यह दोनों प्रतिज्ञप्तियाँ वही अर्थ व्यक्त करती हैं जोकि पहली दो प्रतिज्ञप्तियों का है, यद्यपि पिछली दो प्रतिज्ञप्तियों का रूप कुछ असाधारण अवश्य है । अब हम (3) और (4) को दो भागों में इस प्रकार बाँट सकते हैं :

(5) (कोई चीज़ है) (जोकि अप्सरा है) ।

(6) (कोई चीज़ है) (जोकि घोड़ा है) ।

'कोई चीज है' यह प्रतिज्ञप्ति तर्कशास्त्र का एक मूलभूत प्रत्यय है और इसका अधिक विश्लेषण नहीं किया जा सकता । इसको 'अंशव्यापी परिमाणक' या 'अस्तित्वपरक परिमाणक' की संज्ञा दी गई है । व्याकरण का सर्वनाम भी तर्कशास्त्र का एक मूलभूत प्रत्यय है और तर्कशास्त्र में इसका वही काम है जोकि सरल बीजगणित में किसी चर का है । तर्कशास्त्र में हम इस शब्द के स्थान में 'य', 'र', 'ल' का प्रयोग करते हैं और यही अक्षर किसी वस्तु के लिए भी । इन अक्षरों का प्रयोग करके हम (5) और (6) को ऐसे लिख सकते हैं :

(7) (य है) (य अप्सरा है)

(8) (य है) (य घोड़ा है)

अब हम 'अप्सरा है' और 'घोड़ा है' के लिए विधेय अचर के प्रतीक 'त' तथा 'थ' का प्रयोग करके (7) और (8) को ऐसे लिख सकते हैं :

(9) (य है) (त य)

(10) (य है) (थ य)

अन्त में 'वहाँ है' के लिए हम एक नए प्रतीक '∃' का प्रयोग करें और उसकी सहायता द्वारा (9) और (10) को ऐसे लिखें :

(11) (∃ य) (त य)

(12) (∃ य) (थ य)

यह सूत्र 'अप्सराएं होती हैं' तथा 'घोड़े होते हैं' एवं इस प्रकार की अन्य प्रतिज्ञप्तियों की तार्किक रचना को प्रदर्शित करते हैं। और इसी रचना ऊपर उन प्रतिज्ञप्तियों का तार्किक स्वरूप निर्भर है।

चूंकि (11) और (12) में दिए गए (4) का रूप अप्रचलित है इससे शंका पैदा हो सकती है कि क्या ऐसी सरल प्रतिज्ञप्ति जैसे 'घोड़े होते हैं' या 'अप्सराएं होती हैं' की तार्किक रचना को इतने टेढ़े-मेढ़े विश्लेपण द्वारा बताना आवश्यक या वांछनीय है, परन्तु यह शंका निराधार है। उपर्युक्त विश्लेपण महत्त्वपूर्ण है और इसके गुणों का परिचय जैसे हम आगे बढ़ेंगे, वैसे पता लगेगा।

4·4 कुछ परिमाणित प्रतिज्ञप्तियों का विश्लेषण

मान लीजिए हम कहना चाहते हैं :

(1) अप्सराएं नहीं होती हैं।

स्पष्टतः यह 'अप्सराएँ होती हैं' का निषेध है और इसलिए इसका रूप होगा—

(2) ∼(∃ य) (य अप्सरा है)

या

(3) ∼(∃ य) (त य)

अब विचार कीजिए :

(4) कुछ अप्सराएं शापग्रस्त हैं।

इसको हम लिखेंगे :

(5) (कुछ हैं) (जोकि अप्सरा हैं, और जोकि शाप-ग्रस्त हैं)।

अब हम 'अप्सरा हैं' के लिए 'त' तथा 'शापग्रस्त हैं' के लिए 'थ' का प्रयोग करें और (5) को ऐसे लिखें :

(6) (∃ य) (त य · थ य)।

इसी प्रकार :

(7) कोई अप्सराएं शापग्रस्त नहीं हैं।

को लिख सकते हैं :

(8) ~(कुछ अप्सराएं शाप-ग्रस्त हैं)

अथवा

(9) ~(∃ य) (त य · थ य)

इसी प्रकार :

(10) सब अप्सराएं शाप-ग्रस्त हैं ।

को लिखा जा सकता है :

(11) कोई अप्सराएं शाप-ग्रस्त नहीं हैं ।

जिसका रूप है :

(12) ~(∃ य) (त य · ~ थ य) ।

यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि सूत्र :

(6) (य) (त य · थ य)

निम्नलिखित सूत्र (13) के समान नहीं है :

(13) (य) (त य) · (य) (थ य)

क्योंकि 'त' और 'थ' के वर्तमान अर्थों के अनुसार (6) का अर्थ है :

(4) कुछ अप्सराएँ शापग्रस्त हैं

जबकि (13) का अर्थ है कि कोई चीज़ अप्सरा है और कोई चीज (जो कि हो सकती है वही है और हो सकती है वही नहीं है) शापग्रस्त है अर्थात् (13) का अर्थ वही है जोकि :

(14) अप्सराए होती हैं और शापग्रस्त वस्तुएँ होती है, का है और (14) सत्य हो सकती है चाहे कोई अप्सराएं शापग्रस्त न हों ।

4·5 सार्विक परिमाणक

(1) अप्सराएँ होती हैं ।

इस प्रतिज्ञप्ति को, जहाँ तक इसकी तार्किक रचना का सम्बन्ध है, इस प्रकार लिख सकते हैं :

(2) एक 'य' है ऐसा कि 'य' एक अप्सरा है ।

अथवा

(3) (∃ य) (त य) ।

(4) अप्सराएँ नहीं होती हैं ।

यह प्रतिज्ञप्ति स्पष्टतः (1) की विरोधी है और इसका रूप है :

(5) ~(एक 'य' है ऐसा कि 'य' एक अप्सरा है)

परन्तु (4) को हम इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं :

(6) कोई भी वस्तु अप्सरा नहीं है ।

अथवा

(7) 'य' कुछ भी हो, 'य' अप्सरा नहीं है।

'य कुछ भी हो' प्रतिज्ञप्ति के इस रूप को 'सार्विक परिमाणक' कहा जाता है और इसका प्रतीक है '(य)' इस प्रतीक के द्वारा हम (7) को इस प्रकार लिख सकते हैं :

(8) (य) (∼त य)।

(9) प्रत्येक वस्तु अप्सरा है।

प्रतिज्ञप्ति का रूप है :

(10) (य) (त य)

स्पष्टतः (5) तथा (8) का अर्थ एक ही है और इसलिए एक दृष्टि से इनको व्यक्त करने से सार्विक परिमाणक अनावश्यक है। इसकी व्याख्या अस्तित्वमापक परिमाणक तथा निषेध द्वारा की जा सकती है।

प्रतिज्ञप्तियों के न्याय के नियमों से हमें ज्ञात है कि :

(10) $(\text{तक}_1 \vee \text{तक}_2 \vee \ldots \text{त कन}) \equiv \sim(\sim\text{त क}_1 \cdot \text{त क}_2 \cdot \ldots \text{त कन})$

तथा

(11) $(\text{त क}_1 \cdot \text{त क}_2 \cdot \cdots \text{त कन}) \equiv \sim(\sim\text{त क}_1 \vee \text{त क}_2 \vee \ldots \text{त कन})$

और हम देख चुके हैं कि यदि $\text{क}_1 \ldots$ कन विश्व की समस्त वस्तुएँ हैं तो (10) का वामवर्ती पक्ष सत्य है यदि और केवल यदि

(12) (ɜ य) (त य)

सत्य है।

इसके अतिरिक्त (12) समान है

(13) ∼(य) (∼त य)

के, और (13) सत्य है यदि और केवल यदि (10) का दक्षिणवर्ती पक्ष सत्य है। इसी प्रकार (11) वामवर्ती पक्ष सत्य है यदि और केवल यदि

(14) (य) (त य)

सत्य है और (14) वही है जोकि

(15) ∼(ɜ य) (∼त य)

है, और जो सत्य है यदि और केवल यदि (11) का दक्षिणवर्ती पक्ष सत्य है। इस प्रकार '(य)' तथा '(ɜ य)' की अन्तर्व्याख्या डि-मार्गन के नियमों का परिणाम है जो प्रतिज्ञप्तियों के न्याय के नियम हैं।

यहाँ पर यह बता देना आवश्यक है कि संयोजन और वियोजन का सम्बन्ध परिमाणित सूत्रों के बीच में सर्वसाधारण रूप से तभी पाया जाता है जबकि बोधित व्यक्तियों की संख्या सीमित होती है।

संक्षेप में हम अंशव्यापी तथा सार्विक परिमाणकों की अन्तर्व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं; मान लीजिए '(य) का' तथा '(∃य) खा' आदि साधारण परिमाणित सूत्रों के संक्षेपण हैं तथा दीर्घ 'का' 'खा' आदि 'त य' 'त य ⊃ थय' प्रकार के सरल तथा जटिल मुक्त सूत्रों को निर्दशित करते हैं। चूँकि दीर्घ 'का' 'खा' आदि 'त य' 'थ य' प्रकार की अभिव्यक्तियों के सत्यता फलन हैं इसलिए हम सर्वदा लिख सकते हैं :

(i) '∼(य)∼का' '(∃ य) का' के स्थान पर, और

(ii) '∼(य ∃)का' '(य)∼का' के स्थान पर।

और इनके आधार पर परिमाणित फलनों के बीच में निम्नलिखित समानताएँ प्रस्तुत कर सकते हैं :

(I) (∃ य) (त य) ≡ ∼(य) (∼त य)

(II) (∃ य) (∼त य) ≡ ∼(य) (त य)

(III) ∼(∃ य) (त य) ≡ (य) (∼त य)

(IV) ∼(∃ य) (∼त य) ≡ (य) (त य)

उपर्युक्त समानताओं पर ध्यान देने से दिखाई देगा कि सूत्र I तथा III, अर्थात् '(य) (∼त य)' तथा '(∃य) (त य)' एक-दूसरे के विरोधी हैं। इसी प्रकार II तथा IV, अर्थात् '(त) (त य)' तथा '(∃य) (∼त य)' परस्पर विरोधी हैं। प्रत्येक युग्म में से एक सदस्य में कहा जाता है 'सब . . . ' और दूसरे में 'सब नहीं . . . '। इस तथ्य को 'त' का मूल्य देकर अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। मान लें कि 'त' का अर्थ है 'विनाशवान्' और '∼त' का 'विनाशहीन, तो

(i) (य) (∼त य) प्रत्येक वस्तु विनाशहीन है।

(∃ य) (त य) कम से कम एक वस्तु ऐसी है जो विनाशवान् है।

(ii) (य) (त य) प्रत्येक वस्तु विनाशवान् है।

(∃ य) (∼त य) कम से कम एक ऐसी वस्तु है जो विनाशहीन है।

4·6 अस्तित्त्वपरक परिमाणक का स्वरूप

अभी तक '(∃ य) (त य)' का अर्थ बताया गया है :

(1) कम से कम य का एक ऐसा मूल्य है कि य त है। या
(2) कम से कम एक वस्तु है जोकि त है।
इसके और भी कुछ पाठ इस प्रकार हैं:
(3) कम से कम एक वस्तु त है।
(4) एक वस्तु है जोकि त है।
(5) कोई वस्तु है जोकि त है।
(6) कोई वस्तु त है।
(7) कुछ वस्तुएँ त हैं।

इनमें से (3), (4), (5) व (6) परस्पर आश्रित हैं और निस्सन्देह '(∃ य) (त य)' के पाठ हैं। परन्तु (7) के बारे में शंका हो सकती है और इसलिए इसके विवेचन की आवश्यकता प्रतीत होती है। 'कुछ' जिसका कि प्रयोग (7) में हुआ है सामान्यत: 'एक से अधिक' का अर्थ रखता है अर्थात् 'कम से कम एक त है' सत्य है जबकि एक वस्तु 'त' है और जबकि एक से अधिक वस्तुएँ भी 'त' हैं।

(7) और (3), (4), (5) व (6) का भेद और भी तीक्ष्ण दिखाई पड़ता है जब हम ऐसे जटिल सूत्र लेते हैं, जैसे:
(8) (∃ य) (त य · थ य)
जिसको कि तर्कशास्त्री पढ़ेंगे:
(9) कुछ त थ हैं।

इस पाठ के अनुसार '(∃ य) (त य · थ य)' बहुत-सी प्रचलित प्रतिज्ञप्तियों का सुविदित रूप है। जैसेकि 'कुछ बन्दर चालाक होते हैं' 'कुछ लोग निर्दयी होते हैं' 'कुछ शिक्षक विद्वान् होते हैं'। 'कुछ शिक्षक विद्वान् होते हैं' इस प्रतिज्ञप्ति को हम प्रतीकों द्वारा इस प्रकार लिख सकते हैं:
(10) (कोई वस्तु है) (जोकि शिक्षक है तथा जोकि विद्वान् है)।
अथवा
(11) (य है) (य शिक्षक है तथा य विद्वान् है)।
साधारण भाषा में हम (11) को अधिक ठीक प्रकार से इस तरह कहेंगे:
(12) कोई वस्तु शिक्षक व विद्वान् दोनों हैं।
अथवा
(13) कम से कम एक शिक्षक विद्वान् है।

(12) व (13) में से किसी में भी अनेकता का संकेत नहीं होता इसलिए 'कम से कम एक शिक्षक विद्वान् है' और 'कुछ शिक्षक विद्वान् हैं' इन

दोनों प्रतिज्ञप्तियों को एक ही प्रकार से प्रतीकात्मक भाषा में अभिव्यक्त करना संदेहास्पद मालूम होता है। परन्तु फिर भी हम एक ही सूत्र दोनों के लिए प्रयोग करते हैं। ऐसी परम्परा चल गई है और यह परम्परा उचित है ऐसा सिद्ध किया जा सकता है।

यह निर्विवाद है कि 'कुछ शिक्षक विद्वान् हैं' का अंशतः अर्थ है कि 'कम से कम एक शिक्षक विद्वान् है'। प्रश्न है कि क्या आंशिक अर्थ को समग्र अर्थ के बराबर माना जाए। उत्तर है कि 'कुछ' के प्रयोग से यह विदित होता है कि एक से अधिक शिक्षक विद्वान् हैं और यदि केवल एक ही शिक्षक विद्वान् होता तो संभवतः 'कुछ शिक्षक विद्वान् हैं' यह कथन सत्य न माना जाता। 'कोई शिक्षक विद्वान् नहीं है' और 'कुछ शिक्षक विद्वान् हैं' यह दोनों प्रतिज्ञप्तियाँ सामान्यतः परस्पर विरोधी मानी जाती हैं। परन्तु यह विरोध सत्य नहीं हो सकता। यदि 'कुछ विद्वान् हैं' का अर्थ होता है कि 'एक से अधिक शिक्षक विद्वान् हैं' और 'यदि एक से अधिक शिक्षक विद्वान् हैं' सत्य है तो 'कोई शिक्षक विद्वान् नहीं है' यह असत्य है। और यदि 'एक से अधिक शिक्षक विद्वान् हैं' यह दो दशाओं में असत्य होता है जबकि केवल एक शिक्षक विद्वान् है या कोई भी नहीं।

'कुछ' के प्रयोग में इस प्रकार एक द्वन्द्व पाया जाता है। एक ओर तो हमें 'कुछ' बहुवचन का बोध कराता है और बहुवचन एकवचन का विरोधी होता है। दूसरी ओर 'कुछ' बहुवचन 'कोई नहीं' का विरोधी माना जाता है और 'कोई नहीं' का विरोधी 'कम से कम एक' से होता है। तर्कशास्त्र में 'कोई नहीं' का 'कम से कम एक' का विरोध प्राचीन काल से मान्य रहा है और इसलिए 'कुछ' को उसके न्यूनतम अर्थ 'कम से कम एक' को मानना समीचीन प्रतीत होता है और ऐसी दशा में 'कुछ शिक्षक विद्वान् हैं' और 'कम से कम एक शिक्षक विद्वान् है' इन दोनों प्रतिज्ञप्तियों को एक ही प्रकार के प्रतीकात्मक सूत्र द्वारा व्यक्त करना न्यायसंगत जान पड़ता है।

4·8 अरस्तू के प्रतिज्ञप्ति के चार रूपों का विश्लेषण

अरस्तू ने प्रतिज्ञप्तियों के चार रूप बताए हैं। उनके अनुसार प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति में उद्देश्य, विधेय तथा योजक पाए जाते हैं। 'मनुष्य मरणशील है' में 'मनुष्य' उद्देश्य में 'मरणशील' विधेय तथा 'है' योजक है।

उद्देश्य और विधेय का सम्बन्ध स्वीकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है और इस सम्बन्ध के आधार पर प्रतिज्ञप्ति स्वीकारात्मक और नकारात्मक दो

प्रकार की हो सकती है। उदाहरणार्थ 'मनुष्य मरणशील है' 'मनुष्य मरणशील नहीं है' इनमें से पहली प्रतिज्ञप्ति स्वीकारात्मक और दूसरी नकारात्मक है।

प्रतिज्ञप्तियों का रूप एक दूसरे दृष्टिकोण से भी बनाया जाता है और उस दृष्टिकोण का आधार है विधेय का पूर्णतया या आंशिक-रूप से उद्देश्य पर लागू होना। उदाहरण के लिए 'मनुष्य मरणशील हैं' प्रतिज्ञप्ति में 'मरणशीलता' सब मनुष्यों के ऊपर लागू मानी जा सकती है या कुछ पर ही। अर्थात् हम कह सकते हैं कि सब 'मनुष्य मरणशील हैं' तथा 'कुछ मनुष्य मरणशील हैं'। 'सब मनुष्य मरणशील हैं' प्रतिज्ञप्ति में चूंकि जितने भी मनुष्य हैं सभी के बारे में मरणशीलता आरोपित की गई है इसलिए इस प्रतिज्ञप्ति को 'सर्वव्यापी' कह सकते हैं। 'कुछ मनुष्य मरणशील हैं' प्रतिज्ञप्ति में क्योंकि थोड़े ही मनुष्यों के बारे में मरणशीलता आरोपित की गई है इसलिए इस प्रतिज्ञप्ति को 'अंशव्यापी' कह सकते हैं।

यदि हम उद्देश्य के लिए 'उ' और विधेय के लिए 'वि' का प्रयोग करें तो प्रतिज्ञप्तियों के गुण तथा मात्रा दोनों आधारों को मिलाकर चार प्रकार की प्रतिज्ञप्तियाँ प्राप्त कर सकते हैं—

(1) सब उ वि हैं।
(2) कोई उ वि नहीं है।
(3) कुछ उ वि हैं।
(4) कुछ उ वि नहीं हैं।

इन चारों रूपों को क्रमशः अंग्रेजी के चार अक्षरों 'ए', 'ई', 'आई' 'ओ' से सम्बोधित किया जाता है और यह अक्षर इन रूपों के लिए इतने प्रचलित हो गए हैं कि इनका ही प्रयोग प्रतिज्ञप्तियों का रूप बताने के लिए साधारणतया होता है। इन चारों रूपों में (1) और (2) सर्वव्यापी प्रतिज्ञप्तियों के आरूप हैं और (3) और (4) अंशव्यापी प्रतिज्ञप्तियों के। उसके अतिरिक्त (1) और (3) स्वीकारात्मक प्रतिज्ञप्तियों के आरूप हैं और (2) और (4) नकारात्मक के। इन चारों के उदाहरण निम्न हैं—

ए (1) सब मनुष्य मरणशील हैं।
ई (2) कोई मनुष्य मरणशील नहीं है।
आइ (3) कुछ मनुष्य मरणशील हैं।
ओ (4) कुछ मनुष्य मरणशील नहीं हैं।

अरस्तू के उपर्युक्त प्रतिज्ञप्तियों के चार रूपों को हम वर्तमान प्रतीकावली द्वारा इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

(1) ए : (य) (त य ⊃ थ य) (सब उ वि है)

(2) इ : (य) (त य ⊃ ∼ थ य) (कोई उ वि नहीं है)

(3) आइ : (∃य) (त य · थ य) (कुछ उ वि हैं)

(4) ओ : (∃य) (त य · ∼ थ य) (कुछ उ वि नहीं हैं)

चारों रूपों को किसी एक परिमाणक के द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है क्योंकि एक परिमाणक की व्याख्या दूसरे में निषेध की सहायता से की जा सकती है। सर्वव्यापी परिमाणक द्वारा चारों रूपों को इस प्रकार कर सकते हैं—

(13) ए : (य) (त य ⊃ थ य)

(14) इ : (य) (त य ⊃ ∼ थ य)

(15) आइ : ∼ (य) (त य ⊃ ∼ थ य)

(16) ओ : ∼ (य) (त य ⊃ थ य)

और अस्तित्वपरक परिमाणक द्वारा इस प्रकार—

(17) ए : ∼ (∃य) (त य · ∼ थ य)

(18) इ : ∼ (∃य) (त य · थ य)

(19) आइ : (∃य) (त य · थ य)

(20) ओ : (∃य) (त य · ∼ थ य)

4·81 परम्परागत और आधुनिक विश्लेषणों की तुलना :

अरस्तू द्वारा बताए गए प्रतिज्ञप्तियों के चार रूपों का आधुनिक विश्लेषण कई अर्थों में श्रेष्ठ है। (1) आधुनिक प्रतीकावली से 'ए' और 'ओ' तथा 'इ' और 'आइ' का विरोध दृष्टिपात से ही स्पष्ट हो जाता है। विरोधी प्रतिज्ञप्तियों का लक्षण है कि वे दोनों एकसाथ सत्य नहीं हो सकती और दोनों असत्य हो सकती हैं। यह लक्षण सूत्रों को देखकर तुरन्त ज्ञात हो जाता । देखिए—

यदि इ ∼ (∃य) (त य · थ य) सत्य है तो आइ (∃य) (त य · थ य) असत्य है और यदि ए ∼ (∃य) (त य · ∼ थ य) सत्य है तो ओ (∃य) (त य · ∼ थ य) असत्य है।

अथवा

यदि इ (य) (त य ⊃ ∼ थ य) सत्य है तो आइ ∼ (य) (त य ⊃ ∼ थ य) असत्य है और यदि ए (य) (त य ⊃ थ य) सत्य है तो ओ ∼ (य) (त य ⊃ थ य) असत्य है।

(2) साधारण भाषा में नाना प्रकार के ऐसे कथन मिलते हैं जोकि स्पष्टतया इन चार रूपों में नहीं होते हैं, परन्तु जो इन्हीं चारों रूपों में लिखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए जिन प्रतिज्ञप्तियों के प्रारम्भ में 'कोई' 'प्रत्येक' आते हैं उनको 'सब' में परिवर्तित किया जा सकता है। आधुनिक विश्लेषण में इन शब्दों को सर्वव्यापी परिमाणक '(य)' से व्यक्त किया जाता है। जिन प्रतिज्ञप्तियों में कोई रूप-प्रदर्शक शब्द नहीं मिलते हैं परन्तु जो सार्विक तथ्य को बताते हैं जैसेकि 'चिड़ियाँ उड़ती हैं' उनको भी सार्विक प्रतिज्ञप्तियों का रूप दिया जाता है।

(3) परम्परागत विश्लेषण से आधुनिक विश्लेषण कुछ बातों में भिन्न है। अरस्तू ने निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियों का

(5) देवदत्त मरणशील है।

(6) जिस पहाड़ पर हम चढ़ेंगे वह ऊँचा है।

ठीक वर्गीकरण नहीं किया है। उसके अनुसार इस प्रकार की प्रतिज्ञप्तियाँ सार्विक हैं। अतः उनका विश्लेषण इस प्रकार का है: 'य' के सब मूल्यों के लिए यदि 'य' देवदत्त है तो 'य' मरणशील है। परन्तु यह विश्लेषण अर्थहीन है क्योंकि 'य देवदत्त है' यह फलन नहीं है। 'य' कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसके मूल्य हो सकते हैं क्योंकि देवदत्त एक व्यक्तिवाचक न कि जातिवाचक संज्ञा है।

(4) रूपों का आधुनिक विश्लेषण

ए : ∼(ꓱय) (त य · ∼थ य) । आइ : (ꓱय) (त य · थ य)

इ : ∼(ꓱय) (त य · थ य) ओ : (ꓱय) (त य ·∼थ य)

के अनुसार यदि 'ए' और 'इ' को नकारात्मक और 'आइ' 'इ' व 'ओ' को स्वीकारात्मक कहा जाय तो इसमें कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती है। 'ए' और 'इ' निषेध करतेहैं जबकि 'आइ' और 'ओ' अंगीकार करते हैं कि कुछ फलनों के मूल्य हैं। प्रतिज्ञप्तियों के रूपों का वर्गीकरण स्वीकारात्मक या नकारात्मक किस प्रकार किया जाता है इसके विवेचन पर अधिक महत्त्व न दिया जाता यदि वर्गीकरण के कुछ ऐसे परिणाम न होते जोकि परम्परागत सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं।

अरस्तू के मतानुसार 'सब उ वि हैं' का अर्थ है कि 'कुछ उ वि हैं' तथा 'कोई उ वि नहीं है' का तात्पर्य है कि 'कुछ उ वि नहीं हैं' अर्थात् 'ए', 'आई' की और 'इ' 'ओ' की सत्यता सिद्ध करती है। परन्तु आधुनिक विश्लेषण से यह नहीं सिद्ध होता। इसका मूल कारण यह है कि परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार सार्विक प्रतिज्ञप्तियों का अस्तित्व सूचक आशय होता है। परन्तु

आधुनिक तर्कशास्त्र में ऐसा नहीं होता। परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार 'सब 'उ वि है' और 'कोई 'उ वि नहीं है' प्रतिज्ञप्तियों का क्रमशः कहना है कि—

(य) (त य ⊃ थ य) · (∃य) (त य)

तथा

(य) (त य ⊃ ∼थ य) · (∃य) (त य)

आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार केवल उनका इतना ही कहना है कि—

(य) (त य ⊃ थ य)

तथा

(य) (त य ⊃ ∼थ य)

दोनों में से कोई भी अपने में स्वयं अस्तित्व सूचक आशय नहीं रखता।

आधुनिक विश्लेषण की औचित्यता निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियों पर ध्यान देने से प्रमाणित हो जाएगी :

(7) उत्तर प्रदेश के किसी भी भू-भाग से तेल निकालना आसान नहीं है।

(8) सब वैदिक देवता मनुष्यों की तरह आचरण करते हैं।

(9) सब मनुष्य जोकि कीटाणुओं से मुक्त हैं रोग से मुक्त हैं।

यह सब प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य मानी जाती हैं यद्यपि वे सत्य नहीं भी मानी जा सकती हैं। यदि हम यह स्वीकार करें कि 'उत्तर प्रदेश में तेल की खानें हैं' या 'मनुष्य कीटाणुओं से युक्त होते हैं' या 'वैदिक देवता हैं' तो ये प्रतिज्ञप्तियाँ सत्य होती हैं यदि उनका अर्थ निम्नलिखित है :

(7) कोई भी वस्तु नहीं है जोकि उत्तर प्रदेश में तेल की खान है और जो तेल निकालने में आसान हैं।

(8) कोई भी वस्तु नहीं है जोकि कीटाणुओं से मुक्त मनुष्य है और जोकि रोग से मुक्त नहीं है।

(9) कोई भी वस्तु नहीं है जोकि वैदिक देवता है और जोकि मनुष्यों की तरह आचरण नहीं करती।

इन प्रतिज्ञप्तियों को परम्परागत तर्कशास्त्र में इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकते हैं—

(7) कोई उ वि नहीं है और कोई उ है।

(8) सब उ वि हैं, परन्तु कोई उ है।

(9) कोई उ वि हैं परन्तु कोई उ है।

इस प्रकार व्यक्त करने में यह प्रतिज्ञप्तियाँ अरस्तू द्वारा दिए गए रूपों

के अपवाद मानी जा सकती हैं। आधुनिक तर्कशास्त्र प्रतिज्ञप्तियों का रूप इस प्रकार देता है कि उसमें अपवाद बताने की आवश्यकता नहीं रहती और इसलिए वह परम्परागत विश्लेषण से श्रेष्ठ है।

(5) परम्परागत तर्कशास्त्र में प्रतिज्ञप्तियों के चारों रूपों का परस्पर सम्बन्ध, एक चित्र जिसको कि 'विरोध चतुरश्र' कहते हैं से बताया जाता है। वह इस प्रकार हैं :
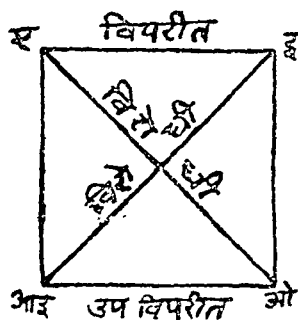
चारों रूपों का परस्पर सम्बन्ध जैसाकि चित्र में बताया गया है, इस प्रकार है—

'ए' और 'ओ' परस्पर विरोधी हैं।

'इ' और 'आइ' परस्पर विरोधी हैं।

'ए' और 'इ' एक-दूसरे के विपरीत हैं।

'आइ' और 'ओ' परस्पर उप विपरीत हैं।

'आइ' 'ए' का और 'ओ' 'इ' का आश्रय है।

'आइ' का 'ए' और 'ओ' का 'इ' उपाश्रय है।

विरोधी प्रतिज्ञप्तियों में से दोनों सत्य नहीं हो सकती न दोनों असत्य अर्थात् यदि एक सत्य होगी तो दूसरी असत्य।

विपरीत प्रतिज्ञप्तियों में से दोनों सत्य नहीं हो सकतीं यद्यपि दोनों असत्य हो सकती हैं।

उप विपरीत प्रतिज्ञप्तियाँ दोनों असत्य नहीं हो सकतीं, परन्तु दोनों सत्य हो सकती हैं।

यदि आश्रय असत्य है तो उसका उपाश्रय भी असत्य होगा। परन्तु यदि आश्रय सत्य है तो उपाश्रय की सत्यता निश्चित नहीं।

यदि उपाश्रय सत्य है तो आश्रय सत्य होगा, परन्तु यदि उपाश्रय असत्य है तो यह आवश्यक नहीं कि आश्रय भी असत्य हो।

परम्परागत तर्कशास्त्र में प्रतिज्ञप्तियों के परस्पर सम्बन्ध का जो विवरण दिया गया है वह आधुनिक विश्लेपण से प्रमाणित नहीं होता। आधुनिक विश्लेपण के अनुसार, जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, 'ए' और 'इ' की सत्यता 'आइ' और 'ओ' की सत्यता को सिद्ध नहीं करती यद्यपि 'ए' और 'ओ' तथा 'इ' और 'आइ' परस्पर विरोधी हैं क्योंकि सार्विक प्रतिज्ञप्तियों का कोई अस्तित्त्व सूचक आशय नहीं माना जाता।

आधुनिक विश्लेषण के अनुसार 'ए' और 'ओ' तथा 'इ' और 'आइ' का विरोध ही अनिवार्य है। उसके अनुसार 'ए' और 'इ' दोनों एकसाथ सत्य हो सकते हैं, क्योंकि प्रतिज्ञप्तियों के उद्देश्य का अस्तित्व-सूचक आशय नहीं है। साधारणत: कोई भी तर्कशास्त्र मान्य नहीं होता जोकि इस प्रकार की '$\sim$(∃ य · त य)', आनुभविक अभ्युपगम की सम्भावना को भाषा में व्यक्त करने में असमर्थ है। संक्षिप्तता के लिए हम अभ्युपगम '(∃ य) (त य) मिथ्या है' के लिए 'मि' का प्रयोग करें। वह सहज ही विदित हो जायगा कि $\sim$[(य) (त य)] $\supset$ [(∃य) (त य · थ य)]' और '$\sim$[(∃य) (त य)] $\supset$ $\sim$ [(∃य)(त य · थ य)]' अथवा 'मि $\supset$ $\sim$आइ' और 'मि $\supset$ $\sim$ओ'। उदाहरण के लिए 'सब दानव दाढ़ी वाले होते हैं' और 'कोई दानव दाढ़ी वाले नहीं होते' यह दोनों सत्य या असत्य हो सकते हैं जबकि यह मान लिया जाए कि दानवों का कोई अस्तित्त्व नहीं है। इस का प्रमाण निम्न प्रकार से दे सकते हैं :

क्योंकि

ए $\equiv$ $\sim$ओ

तथा

मि $\supset$ $\sim$ओ

इसलिए

मि $\supset$ ए

इसके अतिरिक्त

इ $\equiv$ $\sim$आइ

मि $\supset$ $\sim$आइ

इसलिए

मि $\supset$ इ।

यह 'ए' और 'इ' की प्रतीकीकृतरूप से भी स्पष्ट है।

$\sim$(∃य) (त य · $\sim$थ य) $\sim$(∃य) (त य · थ य)

इस प्रकार परम्परागत विरोध चतुरश्र में आधुनिक विश्लेपण के अनुसार केवल विरोध का सम्बन्ध ही रह जाता है और शेप सम्बन्ध विलोम हो जाते हैं। अर्थात् चतुरश्र के किनारे लोप हो जाते हैं और केवल कर्ण रह जाते हैं। इस स्थिति का चित्रण इस प्रकार हो सकता है :
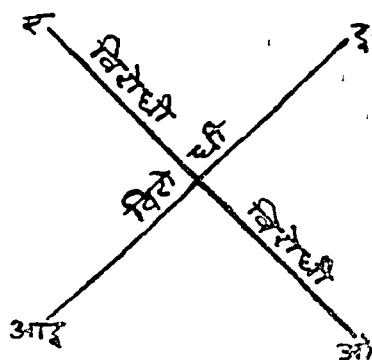
4·9 विधेयों के न्याय व प्रतिज्ञप्तियों के न्याय का सम्बन्ध

प्रतिज्ञप्तियों के न्याय की भाँति विधेयों के न्याय में भी तीन प्रकार के सूत्र पाए जाते हैं। जिनको 'पुनरुक्ति' या 'विश्लेपी', 'आपातिक' या 'संश्लेपी' तथा 'व्याघाती' की संज्ञाएं दी गई हैं। इन तीनों की समानता के निम्न उदाहरण हैं—

विधेयों की पुनरुक्ति	प्रतिज्ञप्तियों की पुनरुक्तियाँ
(1) ($\exists$ य) (त य v ∼त य)	प v ∼प
(2) ($\exists$ य) (त य · थ य)	प ·'फ
(3) ($\exists$ य) (त य ·∼थ य)	प · प

विधेयों के न्याय में प्रतिज्ञप्तियों के न्याय के प्रमेय (पुनरुक्तियाँ) सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए प्रतिज्ञप्तियों के न्याय के कुछ प्रमेयों के समानान्तर विधेयों के न्याय के प्रमेय इस प्रकार हैं :

विधेयों के प्रमेय	प्रतिज्ञप्तियों के प्रमेय
(4) [(य) (त य) v (य) (त य)] ⊃ (य) (त य)	(प v प) ⊃ प
(5) ($\exists$ य) (त य) ⊃ ($\exists$ य) (त य)	(प ⊃ प)
(6) [(य) (त य) · (य) (थ य)] ⊃ (य) (त य)	(प · फ) ⊃ प

परन्तु विधेयों के न्याय में ऐसे भी प्रमेय हैं जिनकी प्रतिज्ञप्तियों के

न्याय में कोई उपमा नहीं है। उदाहरण के लिए विधेयों के निम्नलिखित प्रमेय हैं—

(7) (ヨ य) (त य · थ य) ⊃ [(ヨय) (त य) ⊃ (ヨ य) (थ य)]

(8) [(य) (त य) · (थ य)] ⊃ [(ヨय) (त य) ⊃ (ヨय) (थ य)]

(9) (य) (त य · थ य) ≡ [(य) (त य) · (य) (थ य)]

(10) (य) (त य ⊃ थ य) ⊃ [(य) (त य) ⊃ (य) (थ य)]

(11) [(य) (त य ⊃ थ य) · (ヨय) (त य)] ⊃ (ヨय) (त य · थ य)

(12) (य) (त य ⊃ थ य) ⊃ ∼(ヨय) (त य · ∼थ य)

(13) [(ヨय) (त य) v (ヨय) (थ य)] ≡ (ヨय) (त य v थ य)

(14) [(य)(त य ⊃ थ य) · (ヨय)(त य · द य)] ⊃ (ヨय)(थ य · द य)

प्रतिज्ञप्तियों एवं विधेयों के न्याय के एक मूलभूत भेद का उल्लेख कर देना चाहिए। सत्यता फलनों में सम्मिलित पुनरुक्तियों को प्रमाणित करने की निश्चयात्मक निर्णय पद्धतियाँ प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए सत्यता-तालिका निर्णय पद्धति को अपनाकर यह सिद्ध किया जा सकता है कि कोई सूत्र वैध है या नहीं और यह प्रमाण थोड़े ही पगों में स्थापित हो जाता है। परन्तु विधेयों के न्याय में वैधता निर्णय करने की समस्या का पूर्ण रूप से समाधान नहीं हुआ है। जहाँ तक द्विपदीय प्रतिज्ञप्तियों का सम्बन्ध है जिनका एक पद उद्देश्य है और दूसरा विधेय, वहाँ तक तो वैधता-निर्णय की समस्या का समाधान हो गया है। परन्तु जब इससे अधिक जटिल प्रतिज्ञप्तियों का सामना करना पड़ता है तो समस्या का समाधान पूर्णरूप से नहीं दिखाई देता।

4·10 निर्णय प्रणाली के नियम

एकव्यापी-प्रतिज्ञप्ति के सूत्रों की सत्यता का निर्णय करने के लिए निम्नलिखित नियम हैं—

I कोई भी एकव्यापी सूत्र संतुष्टीय है।

मान लीजिए एकव्यापी सूत्र 'त क है'। यदि हम 'क' का अर्थ लगावें 'देवदत्त' और 'त' का अर्थ 'मरणशील है' तो 'तक' सत्य वाक्य 'देवदत्त मरणशील है' का बोध करेगा। यदि हम 'क' का अर्थ लगावें 'गालिब' और 'त' का अर्थ लगावें' आज जीवित हैं' तो 'तक' का अर्थ हुआ 'गालिब जीवित हैं, जोकि मिथ्या है। इसलिए कोई भी एकव्यापी सूत्र एक सत्य प्रतिज्ञप्ति के लिए प्रयुक्त हो सकता है। यही बात नियम में कही गई है।

II एकव्यापी सूत्र का कोई सत्यता फलन सन्तुष्टीय है यदि और केवल यदि वह व्याघाती नहीं है।

यदि सत्यता फलन व्याघाती नहीं है तो एकव्यापी सूत्र का कोई न कोई अर्थ ऐसा होगा कि उस फलन को सत्य बना देगा। मान लीजिए सत्यता फलन है—

(1) (तक v त ख) ⊃ थ ग

यहाँ पर यदि हम 'क' को 'राम' 'ख' को 'लक्ष्मण' तथा 'ग' को भरत मानें और 'त' का अर्थ लगावें 'वीर' और 'थ' का 'भक्त' तो इस सूत्र का अर्थ होगा

(2) यदि राम वीर हैं या लक्ष्मण वीर हैं तो भरत भक्त हैं। इसकी सत्यता का निम्नलिखित विश्लेषण

$[(1 \vee 1) \supset 1] \equiv (1 \supset 1) \equiv 1$

करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यह फलन सत्य है। परन्तु किसी भी व्याघाती फलन को हम सत्य नहीं बना सकते चाहे कोई भी अर्थ हम एकव्यापी सूत्र का लगावें। उदाहरण के लिए

(3) त क · ∼तक

को कोई भी अर्थ सत्य नहीं बन सकता क्योंकि यदि 'तक' सत्य है तो '∼त क' असत्य है और यदि 'त क' असत्य है तो '∼त क' सत्य है।

III (∃ य) प्रकार के सूत्र जिनके व्यक्तीय चर केवल अस्तित्त्वपरक परिमाणक से बद्ध हैं, सन्तुष्टीय हैं यदि और केवल यदि उनके प्रतिज्ञप्तीय विस्तार विरोधी नहीं हैं।

हमें ज्ञात है कि '(∃ य) ए' प्रकार के सूत्रों का विस्तार एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियों के वियोजन विस्तार की तरह किया जा सकता है। उदाहरण के लिए

(4) (∃ य) (त य · ∼थ य)

का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है :

(5) (त $क_1$ · ∼थ $क_1$) v (त $क_2$ · ∼थ $क_2$) v....(त $क_न$ · ∼थ $क_न$) इसलिए '(∃ य) ए' प्रकार के सूत्र सन्तुष्टीय होंगे यदि और केवल यदि उनके प्रतिज्ञप्तीय विस्तार विरोधी नहीं हैं। उदाहरण के लिए :

(6) (∃ य) (त य · ∼ त य)

का विस्तार करके हम प्राप्त करते हैं

(7) $(\text{त क}_1 \cdot \sim \text{त क}_1) \vee (\text{त क}_2 \cdot \sim \text{त क}_2) \vee .. (\text{त क}_{\text{न}} \cdot \sim \text{त क}_{\text{न}})$ जोकि अस्पष्टत: विरोधी है। इसीलिए (6) सन्तुष्टीय नहीं है।

IV '(य) ए' *सन्तुष्टीय है यदि उसके प्रतिज्ञप्तीय विस्तार विरोधी नहीं हैं।*

हमें ज्ञात है कि '(य) ए' प्रकार के सूत्रों का प्रतिज्ञप्तीय विस्तार एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियों के संयोजन द्वारा होता है। अर्थात् '(य) ए' प्रकार के सूत्रों का कहना है कि प्रत्येक वस्तु 'ए' दशाओं को संतुष्ट करती हैं। मान लीजिए कि सूत्र है—

(8) (य) (त य)

अब मान लीजिए कि कोई ऐसा गुण है जो कि विश्व की प्रत्येक वस्तु में पाया जाता है और 'त' ऐसे ही स्वभाव को सम्बोधित करता है तो 'त क' सत्य होगा चाहे कोई भी अर्थ हम 'क' का लगावें।

यदि सूत्र इस प्रकार का है

(9) $(\text{त य} \supset \text{थ य}) \vee \text{न य}$

तो 'य' के स्थान पर हम 'क' को रख कर प्राप्त करते हैं—

(10) $(\text{त क} \supset \text{थ क}) \vee \text{न}$

और यह कुछ सत्यता मूल्यों के रखने पर सत्य होगा और इसलिए हम (10) की सत्यता प्रमाणित कर सकते हैं चाहे 'क' किसी वस्तु को निर्देशित करे यदि हम 'त' 'थ' 'न' का कोई उचित अर्थ लगाएं। अर्थात्

(11) $(\text{य}) [(\text{त य} \supset \text{थ य}) \vee (\text{न य})]$

सन्तुष्टीय होगा और इसीलिए ऊपर कहा गया है कि '(य) ए' सन्तुष्टीय है यदि उसके प्रतिज्ञप्तीय विस्तार विरोधी नहीं हैं।

4·11 वैधता परीक्षण

परिमाणकों द्वारा प्रतीकीकृत युक्तियों की आकारी प्रमाण परीक्षा के लिए हमें अनुमान के नियमों की सूची में वृद्धि करनी पड़ेगी।

1. सर्वव्यापी दृष्टान्तीकरण : चूंकि किसी प्रतिज्ञप्तीय फलन का सर्वव्यापी परिमाणन तभी सत्य है यदि और केवल यदि उस प्रतिज्ञप्तीय फलन के सभी प्रतिस्थापन दृष्टान्त सत्य हैं, इसलिए किसी प्रतिज्ञप्तीय फलन का कोई प्रतिज्ञापन दृष्टान्त उसके सर्वव्यापी परिमाणन से वैधतापूर्वक अनुमानित किया जा सकता है। इस नियम को हम प्रतीकीकृत कर सकते हैं।

$$\frac{(\text{य})\ \text{त}_{\text{य}}}{\therefore\ \text{त}_{\text{व}}}$$ (जहाँ 'व' व्यक्ति का प्रतीक है)

इस नियम को हम 'सर्वव्यापी दृष्टान्तीकरण का नियम' कह सकते हैं और संक्षेप में 'स० दृ०' इस नियम द्वारा हम निम्नलिखित युक्ति का प्रमाण इस प्रकार दे सकते हैं—

सभी मनुष्य मरणशील हैं।
गाँधी मनुष्य हैं।
गाँधी मरणशील हैं।

1. (य) (त य ⊃ थ य)
2. $\text{त}_{\text{य}}$ / ∴ $\text{थ}_{\text{व}}$
3. $\text{त}_{\text{य}} \supset \text{थ}_{\text{व}}$ । स० दृ०
4. $\text{थ}_{\text{व}}$ 3,2.

2. सर्वव्यापी सामान्यीकरण। हम 'र' का प्रयोग किसी मनचाहे चुने हुए व्यक्ति के लिए करें। ऐसी दशा में 'लर' प्रतिज्ञप्तीय फलन 'त य' का प्रतिस्थापन दृष्टान्त है। स्पष्टत: 'त र' '(य) तय' से वैधतापूर्वक स० दृ० द्वारा निष्पादित होता है क्योंकि जो सब व्यक्तियों के लिए सत्य है वह किसी मन चाहे चुने हुए व्यक्ति के लिए भी सत्य है। तथा जो किसी मन चाहे चुने हुए व्यक्ति के लिए सत्य है वह सभी व्यक्तियों के लिए सत्य है। इसलिए हम नियम मानें कि किसी प्रतिज्ञप्तीय फलन का सर्वव्यापी परिमाणन उसके प्रतिस्थापन दृष्टान्त के 'र' प्रतीक से वैधता पूर्व अनुमानित किया जा सकता है। इस नियम को हम 'सर्वव्यापी सामान्यीकरण का नियम' कहें, संक्षेप में 'स० सा०'। इस नियम का प्रतीकीकृत रूप निम्न होगा :

$$\frac{\text{त र}}{\therefore (\text{य})\ \text{त य}}$$ (जहां 'र' किसी मनचाहे चुने हुए व्यक्ति को इंगित करता है)

इस अतिरिक्त नियम का उपयोग करके हम निम्नलिखित युक्ति की वैधता की परीक्षा कर सकते हैं :

कोई भी मनुष्य अमर नहीं है।

हुश्रा है, सत्यता अनुमानित कर सकते हैं। इस नियम को इस प्रकार लिख सकते हैं :

(∃ य) त य
————(जहाँ 'श' एक वैयक्तिक अचर है जिसका संदर्भ में पूर्व
∵ त श उल्लेख नहीं हुआ है)

इस नियम को हम 'अस्तित्त्वपरक दृष्टान्तीकरण' का नियम कह सकते हैं। संक्षेप में 'अ० द०'।

हम पिछले दो नियमों का प्रयोग निम्नलिखित युक्ति के आकारी प्रमाण के लिए कर सकते हैं।

सभी गाय पूजनीय हैं।
कुछ पशु कुत्ते हैं।
∴ कुछ पशु पूजनीय हैं।।

1. (ग) (घ य ⊃ घ य)
2. (य) (त य· घ य) / ∴ (∃ य) (तय· थ य)
3. त श · घ श 2, अ· द·
4. घ श ⊃ घ श 1, स, द·
5. घ श · घ श 3, क्रम विनिमयता
6. घ श 5, सरलीकरण
7. घ श 4, 6· अनुमित आपादन
8. त श 3, सरलीकरण
9. त श· घ श 8· 7 संयोजन
10. (∃ य) (तय · थय) 9, अ· सा·

अ· द· पर इंगित अंकुश लगाने की आवश्यकता को निम्नलिखित अवैध युक्ति पर विचार करके बताया जा सकता है।

कुछ गायें पशु हैं।
कुछ कुत्ते पशु हैं।
∴कुछ गायें कुत्ते हैं।

यदि हम अंकुश को भुला दें तो हम प्रमाण का निर्माण इस प्रकार कर सकते हैं।

1. (∃ य) (थ य · त य)
2. (∃ य) (घ य · त य) / ∴ (∃ य) (धय · ध य)

3.	ध श· त श	1, अ· ह·
4.	ध श· त श	2, अ. ह. (गलत)
5.	ध श	3, सरलीकरण
6.	ध श	4, सरलीकरण
7.	ध श· ध श	5, 6, संयोजन
8.	(∃ य) (ध य. ध य)	7, अ· सा·

उपर्युक्त उदाहरण में चौथी लाइन में गलती है। दूसरी आधार प्रतिज्ञप्ति आश्वासन देती है कि कम से कम एक वस्तु ऐसी है जोकि पशु और कुत्ता दोनों है। परन्तु हम उसके लिए प्रतीक 'श' का प्रयोग नहीं कर सकते क्योंकि उसका प्रयोग पहले आधार वाक्य में इंगित वस्तु जो गाय तथा पशु दोनों है उसके लिए हो चुका है। यहाँ पर यह स्पष्ट होना चाहिए कि जहाँ प्रमाणीकरण में हम अ· ह· तथा स· ह· दोनों का किसी वैयक्तिक अचर का दृष्टान्तीकरण के लिए करते हैं, वहाँ हमें पहले अ· ह· का प्रयोग करना आवश्यक है।

4·12 अवैधता परीक्षण

तीसरे अध्याय में हमने अवैध युक्तियों की अवैधता की परीक्षा युक्ति के घटक सरल वाक्यों का सत्यता-मूल्य इस प्रकार भर के की कि आधार वाक्य सत्य हों और निष्कर्ष असत्य। उसके सदृश पद्धति का प्रयोग हम परिमाणक-आवेष्ठित अवैध युक्तियों की अवैधता परीक्षण के लिए कर सकते हैं। इस पद्धति का घनिष्ठ संबंध मूलभूत पूर्वमान्यता से है कि विश्व शून्य नहीं है अर्थात् विश्व में कम से कम एक व्यक्ति विद्यमान है।

इस पूर्वमान्यता का कि विश्व शून्य नहीं है संतुष्टीकरण कई प्रकार से हो सकता है : यदि ठीक एक व्यक्ति है, यदि ठीक दो व्यक्ति हैं, या ठीक तीन व्यक्ति हैं, आदि। ऐसी प्रत्येक दशा में अमिश्र सामान्य प्रतिज्ञप्तियों के मिश्रों मे ठीक तार्किक समानता है। यदि विश्व में ठीक एक व्यक्ति है, उदाहरणार्थ 'क' तो

(य) '(त य) ≡ त क' और '(∃ य) (त य) ≡ तक'

यदि ठीक दो व्यक्ति हैं, उदाहरणार्थ 'क' और 'ख' तो

'(य) (त य) ≡ (त क · त ख)' और (∃ य) (त य) ≡ (त क v त ख)'

इसी प्रकार यदि विश्व में व्यक्तियों की ठीक संख्या 'न' है, उदाहरणार्थ 'क', 'ख',...., 'न' तो

(य) (त य) ≡ (त क · तख · त क .... त न)

और

(∃ य) (त य) ≡ (त क ∨ त ख ∨ तग .... ∨ त न)

चूंकि कोई परिमाणक आवेष्ठित युक्ति वैध है यदि प्रत्येक सम्भावित अशून्य विश्व के लिए वह किसी सत्यता-फलनी वैधयुक्ति के तार्किक समान है अतः किसी अवैध युक्ति की अवैधता यह दिखा कर कि कोई सम्भावित अशून्य विश्व है जिसके लिए वह युक्ति किसी अवैध सत्यता फलनी युक्ति के तार्किक समान है सिद्ध कर सकते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति हम प्रदत्त परिमाणक आवेष्ठित युक्ति का रूपान्तरण तर्कतः समान युक्ति जिसमें केवल एकव्यापी, प्रतिज्ञप्तियों और उनके सत्यता-फलनी मिश्रण पाये जाते हैं, और फिर उनकी अवैधता सिद्ध करने के लिए सत्यता-मूल्य को निर्धारित करके कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए निम्न युक्ति लें :

सभी हाथी चौपाए हैं।

सभी सिंह चौपाए हैं।

∴ सभी हाथी सिंह हैं।।

पहले हम इस को प्रतीकीकृत करें :

(य) (त य ⊃ थ य)

(य) (ध य ⊃ थ य)

∴ (य) (त य ⊃ ध य)

यदि विश्व में ठीक एक व्यक्ति है, उदाहरणार्थ 'क' तो उपर्युक्त युक्ति तर्कतः समान है :

त क ⊃ थ क

ध क ⊃ थ क

∴ त क ⊃ ध क

और अनुवर्ती की अवैधता सिद्ध होती है यदि हम 'त क' 'थ क' को 'सत्य' और 'ध क' का 'असत्य' सत्यता मूल्य निर्धारित करें। अतः युक्ति अवैध है।

यहां पर यह सुस्पष्ट कर देना चाहिए कि परिमाणक-आवेष्ठित युक्तियों में परिमाणन के नियमों का कोई प्रयोग नहीं किया जाता। जिस सम्भावित विश्व में जिस में ठीक एक व्यक्ति है हम 'त क ⊃ थक' को (य)

'(तय ⊃ थ य)' स॰ द॰ द्वारा अनुमानित नहीं करते क्योंकि ऐसे सम्भावित विश्व के लिए दोनों कथन तर्कतः समान हैं।

प्रतिज्ञप्तीय फलन 'तय ⊃ थ य' का 'तक ⊃ थ क' अकेला प्रतिस्थापन दृष्टान्त है।

यह सम्भव है कि एक अवैध परिमाणक-आवेष्ठित युक्ति ऐसे विश्व के लिए जिसमें केवल एक व्यक्ति है, एक वैध सत्यताफलनी युक्ति के तर्कतः समान है, यद्यपि वह अवैध युक्ति अवैध सत्यताफलनी युक्ति के तर्कतः समान होगी जबकि विश्व में एक से अधिक व्यक्ति हैं। उदाहरण के लिए निम्न युक्ति पर विचार करें :

सभी हाथी चौपाए हैं।
कुछ सिंह चौपाए हैं।
∴ सभी हाथी सिंह हैं।

जिसका प्रतीकीकरण होगा :

(य) (तय ⊃ थ य)
(∃ य) (धय · थय)
∴ (य) (तय ⊃ धय)

जस विश्व में केवल एक ही व्यक्ति, उदाहरणार्थ 'क' है उसके लिए उपर्युक्त युक्ति तर्कतः समान है निम्नलिखित के :

तक ⊃ थक
धक · थक
∵ खक · धक

जो एक वैध युक्ति है, परन्तु जिस सम्मानित विश्व में ठीक दो व्यक्ति हैं, उदाहरणार्थ 'क' और 'ख', तो प्रस्तुत युक्ति तर्कतः समान हैं।

(तक ⊃ थक) · (तख ⊃ थ ख)
(धक · थक) v (धख · थख)
∵ (तक ⊃ धक) · (तख ⊃ थख)

जो अवैध सिद्ध होती है यदि हम 'तक' 'तख' 'थख' 'थक' 'धख' का 'सत्य' और 'धक' का 'असत्य' सत्यता-मूल्य निर्धारण करें। अतः मूलयुक्ति अवैध है क्योंकि ऐसा अशून्य विश्व संभावित है जिसके लिए यह युक्ति एक अवैध सत्यताफलनी युक्ति के तर्कतः समान है।

उपर्युक्त पद्धति के प्रयोग में यह आवश्यक हो सकता है कि उससे

अधिक व्यापक और उससे भी अधिक व्यापक संभावित अशून्य विश्वों में अवैधता को सिद्ध करने के लिए विचार करना पड़े। प्रश्न उठता है कितना व्यापक सम्भावित अशून्य विश्व हो ताकि अवैधता प्रमाणित की जा सके ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यदि वह किसी अशून्य विश्व जिसमें 2^n व्यक्ति हैं के लिए वैध है तो वह प्रत्येक संभावित अशून्य विश्व अर्थात् सर्वव्यापी रूप में वैध है। यह उत्तर सिद्धान्ततः संतोषजनक है परन्तु व्यवहार में लाभप्रद नहीं है।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित कथनों का रूपान्तर उद्देश्य-विधेय प्रतीकावली में कीजिए।

1. हंस सफेद होता है।
2. कौवा काला और हंस सफेद होता है।
3. हंस सफेद होता तथा रुई सफेद होती है जबकि कौवा काला होता है।
4. यदि कालिदास मनुष्य हैं, तो कालिदास मरणशील हैं।
5. हर मनुष्य बहरा है।
6. हर मनुष्य बहरा नहीं है।
7. कोई मनुष्य बहरा नहीं है।
8. प्रत्येक मनुष्य बहरा नहीं है।
9. सभी मनुष्य बहरे नहीं हैं।
10. कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो बहरा न हो।
11. कुछ मनुष्य बहरे होते हैं।
12. कुछ मनुष्य बहरे नहीं होते हैं।
13. ऐसी बात नहीं है कि कुछ मनुष्य बहरे नहीं होते।
14. ऐसी बात नहीं है कि कोई ऐसे मनुष्य नहीं हैं जो बहरे न हों।
15. कोई भी ऐसे बंदर नहीं हैं जिनके पूंछ न हो।
16. सभी बंदरों के पूंछ नहीं होती।
17. ऐसी बात नहीं है कि कुछ बन्दरों के पूंछ नहीं होती।
18. ऐसे कुछ बंदर नहीं हैं जिनके पूंछ नहीं होती।
19. ऐसी बात नहीं है कि ऐसे कुछ बंदर नहीं हैं जिनके पूंछ नहीं होती।
20. ऐसी बात नहीं है कि सभी बन्दरों के पूंछ नहीं होती।

(ख) उपर्युक्त कथनो के रूपान्तरण में जिनमें अस्तित्त्वपरक परिमाणक का प्रयोग किया है उनका सर्वव्यापी परिमाणक का प्रयोग करके समरूप दीजिए और जिनमें सर्वव्यापी परिमाणक का प्रयोग किया है उनका अस्तित्त्वपरक परिमाणक का प्रयोग करके समरूप दीजिए।

(ग) निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियों का उद्देश्य-विधेय प्रतीकावली में रूपान्तरण कीजिए :

1. यदि कोई चीज खोई है तो किसी को हानि हुई है।
2. यदि कोई चीज़ खोई है तो सम्भवत: नौकर ने उसे चुराया है।
3. यदि कोई नेता बड़े हैं तो कुछ नेता वंदनीय हैं।
4. यदि कोई नेता बड़े हैं तो यदि सभी बड़े नेता वंदनीय हैं तो वह वंदनीय है।
5. यदि सभी विद्यार्थी जो उपस्थित हैं या दर्शनशास्त्र या समाजशास्त्र के विद्यार्थी हैं तो या तो कुछ दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी या समाजशास्त्र के विद्यार्थी उपस्थित हैं।
6. यदि कोई भी विद्यार्थी उपस्थित है तो या तो कोई दर्शनशास्त्र का विद्यार्दी उपस्थित नहीं है या वह दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी है।
7. यदि सभी दर्शनार्थी स्नेही हैं और केवल सम्बन्धी ही दर्शनार्थी हैं तो यदि कोई दर्शनार्थी हैं तो कुछ सम्बन्धी स्नेही हैं।
8. यदि कोई भी दर्शनार्थी हैं और केवल सम्बन्धी ही दर्शनार्थी हैं, तो वह अवश्य ही सम्बन्धी हैं।
9. यदि सभी पुत्र आज्ञाकारी हों और कोई भी पिता चरित्रवान न हो, तो कुछ पुत्र कष्ट पाएंगे।
10. यदि कोई भी पिता चरित्रहीन हो, तो यदि सभी पुत्र आज्ञाकारी हैं तो वह कष्ट पाएगा।
11. सभी समय के क्षण किसी दूसरे क्षण के बाद हैं।
12. कोई भी समय का क्षण ऐसा नहीं है कि सभी क्षण उसके बाद हैं।
13. कोई भी क्षण ऐसा नहीं है कि कोई भी क्षण उसके बाद नहीं है।
14. यदि समय के दो क्षण सर्वसम नहीं हैं, तो एक-दूसरे के बाद हैं।
15. यदि एक क्षण दूसरे क्षण के बाद है, तो दूसरा पहले के पूर्व है।

(घ) निम्नलिखित युक्तियों की वैधता अथवा अवैधता की परीक्षा कीजिए :

1. हर घटना किसी घटना (कुछ घटनाओं) से उत्पन्न होती है। अतः कोई घटना ऐसी है जोकि सब घटनाओं को उत्पन्न करती है।
2. हर घटना किसी घटना (कुछ घटनाओं) से उत्पन्न होती है। इसलिए हर घटना किसी घटना (कुछ घटनाओं) को उत्पन्न करती है।
3. यदि 'का' 'खा' का मालिक है तो 'खा' 'का' का नौकर है। इसलिए हर कोई जो अपने का मालिक है अपने का नौकर भी है।
4. यदि एक वाक्य दूसरे वाक्य से व्युत्पन्न है, तो यदि दूसरा वाक्य विश्लेपी है तो पहला भी विश्लेपी होगा। तदनुसार यदि एक वाक्य दूसरे से व्युत्पन्न है तो पहला विश्लेपी होगा यदि दूसरा भी विश्लेपी है।
5. यदि कोई वियोजक सत्य नहीं है तो उसके कोई भी वियोज्य सत्य नहीं हैं।
   कारण : वियोजक सत्य है केवल जबकि उसका कम से कम एक वियोज्य सत्य है।
6. सभी दार्शनिक प्रतिज्ञप्तियाँ विश्लेपी हैं। कम से कम एक दार्शनिक प्रतिज्ञप्ति असत्य है। असत्य विश्लेपी प्रतिज्ञप्ति हर प्रतिज्ञप्ति का व्याघात करती है। इससे इस दावे की असत्यता स्थापित होती है कि कोई भी दार्शनिक प्रतिज्ञप्ति किसी भी वैज्ञानिक प्रतिज्ञप्ति का व्याघात करती है।
7. किसी भी वैध न्याय वाक्य में कोई पद जो निष्कर्ष में व्याप्त नहीं होता जबतक कि वह किसी आधार वाक्य में व्यास न हो। किसी भी न्याय-वाक्य में जिसका संयोग ई ओ आई हो कम से कम एक पद ऐसा होता है जोकि किसी आधार वाक्य में व्याप्त है पर निष्कर्ष में व्याप्त नहीं है। अतः कोई न्याय वाक्य जिसका संयोग ई ओ आई है वैध नहीं है।
8. हर इन्द्रिय प्रत्यय का कुछ कारण है। किसी चीज का अस्तित्त्व नहीं है केवल उसके जोकि अन्तरात्मा या प्रत्यय नहीं हैं। प्रत्यय किसी चीज को उत्पन्न नहीं करते। इसलिए एक अन्तरात्मा (ईश्वर) है जोकि समस्त इन्द्रिय प्रत्ययों का हेतु है।

9. कोई व्यक्ति अच्छा है यदि और केवल यदि वह हरेक से प्रेम करता है। इसलिए ऐसा व्यक्ति है जोकि सब अच्छे व्यक्तियों से प्रेम करता है।
10. सबसे अशान्त प्रदेश पूर्व में है। सभी पूर्वी प्रदेश कांग्रेसी हैं। इसलिए सबसे अशान्ति प्रदेश कांग्रेसी हैं।
11. ठीक एक पैसा मेरे दाहिने हाथ में है। ठीक एक पैसा मेरे बाएं हाथ में है। कोई भी वस्तु मेरे दोनों हाथों में नहीं है। इसलिए मेरे हाथों में ठीक दो पैसे हैं।

5

सम्बन्धों का न्याय

5·1 सम्बन्धीय प्रतिज्ञप्तियाँ

जिन प्रतिज्ञप्तियों में दो या अधिक नाम निहित होते है उनकी व्याख्या पृथक् उद्देश्यपदों से युक्त प्रतिज्ञप्तियों के मिश्रणों के रूप में करना साधारणतय: उपयुक्त है। उदाहरणार्थ 'ईसा तथा गाँधी महापुरुष हैं' प्रतिज्ञप्ति की व्याख्या दो एकव्यापी प्रतिज्ञप्तियों के संयोजन के रूप में उचित है। परन्तु कुछ अन्य प्रतिज्ञप्तियों का ऐसा विश्लेषण, यद्यपि उनका शाब्दिक रूप उपर्युक्त प्रकार का ही है, अनुपयुक्त है। यथा 'मीरा कृष्ण की भक्त हैं' दो अभिव्यक्तियों 'मीरा भक्त हैं'—एवं 'कृष्ण भक्त हैं' का न तो संयोजन है न अन्य कोई सत्यताफलन। वस्तुतः इस प्रतिज्ञप्ति का इस प्रकार विभाजन उसकी सार्थकता को नष्ट कर देता है, क्योंकि इस प्रतिज्ञप्ति का अर्थ यह नहीं है कि मीरा और कृष्ण दोनों भक्त हैं अथवा भक्ति रखते हैं वरन् यह कि एक भक्त है और दूसरा भगवान है। इस प्रतिज्ञप्ति की यह मान्यता नहीं है कि मीरा एवं कृष्ण दोनों ही किसी गुण-विशेष (भक्ति) से सम्पन्न हैं बल्कि यह कि उनमें एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध है। मीरा के लिए केवल यह नहीं कहा गया है कि वह भक्त हैं, ('भक्ति' का जो भी अर्थ हो) बल्कि यह कि वह कृष्ण की भक्त है।

दो नामों के मध्य सम्बन्ध व्यक्त करने वाली कुछ अन्य प्रतिज्ञप्तियों के उदाहरण हैं:

राधा कृष्ण से प्रेम करती हैं।
प्लातोन सुकरात के शिष्य हैं।
लखनऊ दिल्ली के पश्चिम है।
लखनऊ दिल्ली से छोटा है।

पाकिस्तान चीन का मित्र है।
लक्ष्मण और शत्रुघ्न युगल हैं।

जो सम्बन्ध सदैव दो नामों के मध्य होते हैं उनको 'द्वयाश्रित' अथवा 'द्विपदीय' कहते हैं। परन्तु सम्बन्ध दो से अधिक-तीन, चार, पाँच, या उससे भी अधिक-नामों के बीच हो सकते हैं। तीन नामों के मध्य के सम्बन्ध को 'त्रिपदीय', चार के बीच में 'चतुर्पदीय', पाँच के बीच में 'पँचपदीय' इत्यादि कहे जाते हैं। त्रिपदीय सम्बन्धों के उदाहरण निम्न हैं :

विनोद ने गिरीश को परीक्षाफल पर बधाई दी।
चीन ने भारत पर 1965 में आक्रमण किया।
लखनऊ दिल्ली और पटना के मध्य है।
भारत ने गोआ को पुर्तगालियों से मुक्त किया।
बुद्ध ने सारनाथ में धर्मचक्र का प्रवर्तन किया।

चतुर्पदीय सम्बन्धों वाली प्रतिज्ञप्तियों के निम्न उदाहरण हैं :

राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न भाई-भाई है।
न्यायाधीश ने अपराधी की हत्या के अभियोग में मृत्युदण्ड दिया।
निरीक्षक ने नकलबाजों को अपने परीक्षा कक्ष में पकड़ लिया।
नटवरलाल ने जाली बिल्टी दूकानदार के हाथ सौ रुपये में बेच दी।

5·2 सम्बन्धों के आकारी गुण

सम्बन्धात्मक युक्तियों की वैधता सम्बन्धों के आकारी गुणों पर आधारित होती है। द्विपदीय सम्बन्धों के कुछ आकारी गुणों का आगे वर्णन किया जा रहा है। उनके आधार पर अन्य बहुपदीय सम्बन्धों को भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

5·21 सममिति

'राम सीता के पति हैं' प्रतिज्ञप्ति में 'पति होने' का सम्बन्ध पाया जाता है। 'सीता राम की पत्नी हैं' प्रतिज्ञप्ति में 'पत्नी होने' का सम्बन्ध पाया जाता है। दोनों प्रतिज्ञप्तियाँ एक ही वस्तुस्थिति को दो दृष्टिकोणों (=सम्बन्धों) द्वारा व्यक्त करती हैं। दूसरा सम्बन्ध पहले का प्रतिलोम है। यदि राम का सीता के साथ 'पति' का सम्बन्ध है तो सीता का राम के साथ यह सम्बन्ध नहीं है। ऐसे सम्बन्ध को 'अ-सममिति संबंध' कहते हैं।

'संस्कृत साहित्य उतना ही समृद्ध है जितना अंग्रेजी साहित्य' प्रतिज्ञप्ति

में 'समृद्ध होने' का संबंध सममिति संबंध है, क्योंकि यदि संस्कृत साहित्य का अंग्रेजी साहित्य से ऐसा सम्बन्ध है तो अंग्रेजी साहित्य का संस्कृत साहित्य के साथ वही सम्बन्ध है। अर्थात् सममिति सम्बन्ध अपने प्रतिलोम रूप में भी वही होता है; असममिति सम्बन्ध अपने प्रतिलोम के विपरीत होता है।

यदि भारत पाकिस्तान से मैत्री चाहता है तो यह आवश्यक नहीं है कि पाकिस्तान भारत से मैत्री चाहता है। वस्तुतः पाकिस्तान मैत्री नहीं चाहता। अर्थात् 'मैत्री चाहना' कभी सममिति और कभी असममिति सम्बन्ध हो सकता है। ऐसे सम्बन्धों को 'न सममिति' की संज्ञा दी जाती है। 'प्रेम करना', 'वैर करना' इसी प्रकार के सम्बन्ध हैं।

5·22 संचारिता

यदि 'क' 'ख' का पिता है और 'ख' 'ग' का पिता है तो 'क' 'ग' का पिता कदापि नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि राम दशरथ के पुत्र हैं और लव राम के पुत्र तो लव दशरथ के पुत्र नहीं हैं। 'पिता होने', 'पुत्र होने' और इसी तरह के अन्य सम्बन्धों को असंचारी कहते हैं।

यदि राम भरत से बड़े हैं और भरत लक्ष्मण से बड़े हैं तो राम लक्ष्मण से बड़े हैं। 'बड़े' या 'आयु में अधिक होने का सम्बन्ध संचारी है।

यदि भारत पाकिस्तान का मित्र है और पाकिस्तान चीन का मित्र है तो यह आवश्यक नहीं कि भारत चीन का मित्र है। वस्तुस्थिति यह है कि भारत चीन का मित्र नहीं है। यदि भारत पाकिस्तान का मित्र है और पाकिस्तान अमरीका का मित्र है तो यह आवश्यक नहीं है कि भारत अमरीका का मित्र हो परन्तु वस्तुतः ऐसा है। ऐसे सम्बन्ध जो कभी असंचारी और कभी संचारी हो सकते हैं उनको 'नसंचारी' कहा जाता है। सममिति तथा संचारिता के सम्बन्ध सर्वथा स्वतन्त्र हैं यद्यपि उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह भिन्न नहीं हैं। दोनों सम्बन्धों को स्वतन्त्र मानकर हम दोनों को एक साथ लागू करके निम्नांकित नौ प्रकार के सम्बन्ध प्राप्त कर सकते हैं :

1. संचारी सममित जैसे 'उतना ही पुरातन होना';
2. संचारी असममित जैसे 'पूर्वज होना';
3. संचारी नसममित जैसे 'आयु में अधिक न होना';
4. असंचारी सममित जैसे 'पति' अथवा 'पत्नी होना':
5. असंचारी असममित जैसे 'पिता होना';

6. असंचारी नसममित जैसे 'निकटतम समसम्बन्धी होना';
7 नसंचारी सममित जैसे 'चचेरा भाई होना';
8. नसंचारी असममित जैसे 'मालिक होना'; तथा
9. नसंचारी नसममित जैसे 'प्रेमी होना', 'शत्रु होना' आदि ।

5·23 सहसम्बन्ध

सहसम्बन्ध का गुण उन विषयों की संख्या पर आधारित है जिनसे निर्देश्य प्रस्तावित सम्बन्ध से सम्बद्ध होते हैं। यदि अमेरिका भारत का ऋण-दाता है तो अमेरिका के अतिरिक्त अन्य राष्ट्र भी भारत से इसी आधार पर सम्बन्धित हो सकते हैं और भारत के अतिरिक्त अन्य देश भी अमेरिका से इस प्रकार सम्बन्वित हो सकते हैं। ऐसे सम्बन्ध को 'बहु-बहु' सम्बन्ध कहते हैं ।

यदि राम दशरथ के पुत्र हैं तो राम के अतिरिक्त अन्य विभूतियां भी दशरथ से यह सम्बन्ध रख सकते हैं। (जैसे भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न), परन्तु दशरथ केवल अकेले होंगे जिनसे राम इत्यादि का पुत्र का सम्बन्ध हो। ऐसे सम्बन्ध को 'बहु-एक' सम्बन्ध कहते हैं।

इस का विलोम 'एक-बहु' सम्बन्ध है। दशरथ राम के पिता हैं। दशरथ, भरत व शत्रुघ्न के भी पिता हैं। 'पिता' का सम्बन्ध अतः 'एक-बहु' सम्बन्ध का उदाहरण है ।

'दस नौ से एक अधिक है' प्रतिज्ञप्ति में केवल एक ही संख्या ऐसी है जिससे 'दस' का इस प्रकार का सम्बन्ध हो सकता है और केवल एक ही संख्या ऐसी है जो 'नौ' से इस प्रकार सम्बन्धित हो सकती है। ऐसे सम्बन्धों को 'एक-एक' सम्बन्ध कहते हैं। ऐसे सम्बन्ध सहसम्बन्धों की व्याख्या में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखते हैं।

5·24 पूर्वापर संयुक्तता

सम्बन्धों का यह गुण इस तथ्य पर आधारित है कि किसी समूह के प्रत्येक युग्म में कोई निश्चित सम्बन्ध है या नहीं। उदाहरण के लिए पूर्णांकों के मध्य अधिक होने के सम्बन्ध को लीजिए। किन्हीं दो पूर्णांकों के मध्य या तो एक का दूसरे से अधिक होने अथवा एक का दूसरे से कम होने का विलोम सम्बन्ध होता है। इस गुण से युक्त सम्बन्ध को 'पूर्वापर संयुक्त सम्बन्ध कहते हैं। पूर्णांकों के किसी युग्म में एक का दूसरे से दो अधिक होने का सम्बन्ध नहीं है अतएव इस सम्बन्ध में पूर्वापर संयुक्ति का गुण नहीं है।

5·25 स्ववाचकता

जिन सम्बन्धों में सममिति और संचारिता दोनों ही गुण विद्यमान होते है उनमें 'समानता' का आकारिक गुण होता है। ऐसे सम्बन्धों का एक अन्य (तीसरा) महत्त्वपूर्ण गुण भी होता है जिसे 'स्ववाचकता' कहते हैं। इस गुण की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है : जब किसी पद या नाम और स्वयं उसके बीच कोई सम्बन्ध हो तो वह सम्बन्ध 'स्ववाचक' है। व्याकरण में इस सम्बन्ध का निरूपण वहाँ होता है जहाँ विधेय उद्देश्य को ही सम्बोधित करता है। यथा 'उसने अपने को धोखा दिया'। स्ववाचक सम्बन्ध का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण तादात्म्य का सम्बन्ध है। यदि 'य' कोई पद है तो 'य' की 'य' से तादात्म्यता है। स्ववाचक न होते हुए भी कोई सम्बन्ध सममित हो सकता है, जैसे 'विवाहित जन होना'। रसेल ने कहा है कि केवल तादात्म्य सम्बन्ध को ही निरुपाधिक एवं असीमित अर्थ में स्ववाचक कहा जा सकता है। स्ववाचकता, सममिति, तथा संचारिता के आकारिक गुण तादात्म्य और समानता के सम्बन्धों में पाए जाते हैं। अनुरूपता तथा सहआपादन तथा अन्य प्रकार के कोई भी सम्बन्ध जिसमें यह आकारिक गुण होगा, उसका आकारिक स्वरूप तादात्म्य का होगा।

5·3 सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियों पर आधारित युक्तियाँ

सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियों पर आधारित युक्तियों के कई रूप हैं। इनका एक सरल उदाहरण निम्नलिखित है :

किशोर हरिहर से आयु में अधिक है।
हरिहर प्रकाश से आयु में अधिक है।
किशोर प्रकाश से आयु में अधिक है।

उपर्युक्त से जटिल उदाहरण इस प्रकार है :

नीता श्याम को चाहती है।
जो कोई श्याम को चाहता है, वह गिरीश को भी चाहता है।
नीता केवल सौम्याकृति वाले व्यक्तियों को चाहती है।
गिरीश एक सौम्याकृतिवाला व्यक्ति है।

उपर्युक्त उदाहरण की जटिलता परिमाणन के समावेश से उत्पन्न होती है। बहुपरिमाणन के समावेश से जटिलता और अधिक हो जाती है। उदाहरण के लिए निम्न युक्ति लीजिए जोकि वैध है :

सभी घोड़े जानवर हैं ।
एक घोड़े का सिर एक जानवर का सिर है ।

5·4 सम्बन्धीय प्रतिज्ञप्तियों का प्रतीकीकरण

सम्बन्धी प्रतिज्ञप्तियों पर आधारित युक्तियों की वैधता की परीक्षा करने की विधियों की विवेचना करने के पहले उनके प्रतीकीकरण की समस्या का निराकरण अपेक्षित है ।

जिस प्रकार एक ही विधेयात्मक प्रतीक विभिन्न प्रतिज्ञप्तियों में प्रयुक्त हो सकता है, उसी प्रकार एक ही सम्बन्धात्मक प्रतीक विभिन्न प्रतिज्ञप्तियों में स्थान ग्रहण कर सकता है । जैसे 'शंकर आचार्य हैं', 'रामानुज आचार्य हैं', 'माध्व आचार्य हैं', 'वल्लभ आचार्य हैं' प्रतिज्ञप्तियों में विधेय 'आचार्य' समान है । वैसे ही 'पटेल गाँधी के अनुयायी हैं, 'मोरार जी पटेल के अनुयायी हैं' प्रतिज्ञप्तियों में 'अनुयायी' का सम्बन्ध समान है । और जिस प्रकार चारों ही उद्देश्य-विधेयात्मक प्रतिज्ञप्तियों को 'य आचार्य हैं' प्रतिज्ञप्तीय फलन के विभिन्न प्रतिस्थापन दृष्टान्त माने जाते हैं, उसी प्रकार उपर्युक्त सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियों को 'य र का अनुयायी है' प्रतिज्ञप्तीय फलन के विभिन्न प्रतिस्थापन दृष्टान्त मान सकते हैं । चर 'य' को अचर 'पटेल' से तथा चर 'र' को अचर 'गाँधी' से प्रतिस्थापित करने पर हमें 'पटेल गाँधी के अनुयायी हैं' प्राप्त होता है । इसी प्रकार 'य' तथा 'र' को दो विशेष अचरों से प्रतिस्थापित करने पर 'मोरार जी पटेल के अनुयायी हैं' प्रतिज्ञप्ति प्राप्त होती है । इन सभी प्रतिस्थापनाओं में प्रतिस्थापन के क्रम का अत्यधिक महत्त्व है । यदि पहली अभिव्यक्ति में 'य' को गाँधी' और 'र' को 'पटेल' से प्रतिस्थापित करें तो परिणाम असल प्रतिज्ञप्ति 'गाँधी पटेल के अनुयायी है' होगा ।

जिस प्रकार 'य मनुष्य है' की तरह के एकचरीय प्रतिज्ञप्तीय फलन को संक्षेप में '$म_{य}$' लिख सकते हैं, उसी प्रकार 'य र के अनुयायी हैं' की तरह के सम्बन्धात्मक दो चरीय प्रतिज्ञप्तीय फलनों को संक्षेप में '$अ_{यर}$' के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं । इसी प्रकार 'य र तथा ल के मध्य में है' प्रतिज्ञप्तीय फलन का संक्षिप्त रूप '$म_{यरल}$' होगा और 'य न र को ल के हाथ वेच दिया' '$वे_{यरल}$' होगा ।

उपर्युक्त परिपाटी को मानकर पहली सम्बन्धात्मक युक्ति का

जिसमें किसी भी परिमाणक की अपेक्षा नहीं है, प्रतीकीकरण सरलता से किया जा सकता है। व्यष्टिपरक अचरों 'कि', 'ह', और 'प्र' का 'किशोर', 'हरिहर' और 'प्रकाश' के लिए प्रयोग करके, तथा 'य र से आयु में अधिक है' को संक्षेप में '$आ_{यर}$' द्वारा अभिव्यक्त करने पर युक्ति का प्रतीकीकृत रूप निम्न होगा :

$आ_{कि\ ह}$

$आ_{ह\ प्र}$

$\therefore आ_{कि\ प्र}$

दूसरी युक्ति का प्रतीकीकरण भी अधिक दुरूह नहीं है क्योंकि इसकी किसी भी घटक प्रतिज्ञप्ति में एक से अधिक परिमाणक अपेक्षित नहीं है। व्यष्टिपरक अचरों 'नि', 'श्' और 'गि' को क्रमश: 'नीता', 'श्याम' और 'गिरीश' के द्योतक रूप में 'य एक सौम्याकृति वाला व्यक्ति है' को संक्षेप में 'सौ' के रूप में, तथा य ल को चाहता है' को संक्षिप्त प्रतीक '$चा_{य\ ल}$' के रूप में प्रयोग करके इस युक्ति का प्रतीकीकरण निम्न प्रकार से होगा :

1. $चा_{नी\ श्}$
2. $(य)\ (चा_{य\ श्} \supset चा_{य\ गि})$
3. $(य)\ (चा_{नी\ य} \supset सौ_{य})$

$\therefore सौ_{गि}$

इस युक्ति की वैधता का निदर्शन इतना सरल है कि प्रतीकीकरण की अधिक जटिल समस्याओं की चर्चा करने के पहले इस निदर्शन को आकारी प्रमाण विधि द्वारा स्पष्ट कर दिया जाय। प्रमाण इस प्रकार है :

4. $चा_{नी\ श्} \supset चा_{नी\ गि}$	2 से स० ह० द्वारा
5. $चा_{नी\ गि}$	2, 1 से विधायक हेतु फलानुमान द्वारा
6. $चा_{नी\ गि} \supset सौ_{गि}$	3 से स० ह० द्वारा
7. $सौ_{गि}$	6, 5 से विधायक हेतु फलानुमान द्वारा

जब एक ही सम्वन्धात्मक प्रतिज्ञप्ति में कई परिमाणक अपेक्षित होते हैं तो उसका प्रतीकीकरण जटिल हो जाता है। इस जटिलता को सरलता से समझने के लिए हम केवल दो व्यष्टिपरक अचरों 'क' और 'ख' तथा प्रतिज्ञप्तीय फलन 'य र को आकर्षित करता है' (संक्षेप में '$आ_{य र}$') पर ध्यान दें। स्पष्ट है कि 'क ख को आकर्षित करता है' तथा 'ख क की ओर आकर्षित होता है' का एक ही अर्थ है। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि पहली अभिव्यक्ति कर्तृ वाच्य है और दूसरी कर्मवाच्य। दोनों का संक्षिप्त प्रतीकात्मक रूप '$आ_{क ख}$' ही होगा।

इसी प्रकार 'ख क को आकर्षित करता है' तथा 'क ख की ओर आकर्षित होता है' एक ही सूत्र '$आ_{ख क}$' द्वारा प्रतीकीकृत किया जा सकता है। और '$आ_{य र}$' प्रतिज्ञप्तीय-फलन के यह दोनों प्रतिस्थापन दृष्टान्त तर्कशास्त्रीय दृष्टि से एक दूसरे से स्वतन्त्र है। अर्थात् इनमें से कोई भी किसी अन्य प्रतिज्ञप्ति की सत्यता को निष्पादित न करते हुए भी सत्य हो सकता है।

इसी प्रकार 'क प्रत्येक वस्तु को आकर्षित करता है' अथवा 'प्रत्येक वस्तु क की ओर आकर्षित होती है' को

$$(य)\ आ_{क\ य}$$

'क कुछ वस्तुओं को आकर्षित करता है' अथवा कुछ वस्तुएँ क की ओर आकर्षित होती हैं' को

$$(\exists\ य)\ आ_{क\ य}$$

'प्रत्येक वस्तु क को आकर्षित करती है' अथवा 'क प्रत्येक वस्तु की ओर आकर्षित होता है' को

$$(य)\ आ_{य\ क}$$

तथा 'कुछ वस्तुएँ क को आकर्षित करती हैं' अथवा 'क कुछ वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है' को

$$(\exists\ य)\ आ_{य\ क}$$

के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

जब हम व्यष्टिपरक अचरों का बिलकुल त्याग कर पूर्णतय: सामान्य

सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियों के प्रतीकीकरण की ओर अग्रसर होते हैं तो समस्या और जटिल हो जाती है। निम्नलिखित सरलतम प्रतिज्ञप्तियाँ लीजिए :

(1) प्रत्येक वस्तु प्रत्येक वस्तु को आकर्षित करती है।
(2) प्रत्येक वस्तु प्रत्येक वस्तु द्वारा आकर्षित होती है।
(3) कुछ वस्तुएँ कुछ वस्तुओं को आकर्षित करती हैं।
(4) कुछ वस्तुएँ कुछ वस्तुओं द्वारा आकर्षित होती हैं।
(5) कोई भी वस्तु किसी वस्तु को आकर्षित नहीं करती है।
(6) कोई भी वस्तु किसी वस्तु द्वारा आकर्षित नहीं होती।

इन्हें निम्न सूत्रों द्वारा प्रतीकीकृत किया जा सकता है :

(1) (य) (र) $\text{आ}_{\text{य र}}$

(2) (र) (य) $\text{आ}_{\text{य र}}$

(3) (∃य) (∃र) $\text{आ}_{\text{य र}}$

(4) (∃र) (∃य) $\text{आ}_{\text{य र}}$

(5) (य) (र) $\sim\text{आ}_{\text{य र}}$

(6) (र) (य) $\sim\text{आ}_{\text{य र}}$

इन प्रतिज्ञप्तियों में स्पष्ट ही (1) और (2) परस्पर समान हैं। उसी प्रकार (3) और (4) तथा (5) और (6) भी समान हैं।

परन्तु जब हम निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियाँ लेते हैं :

(7) प्रत्येक वस्तु कुछ वस्तुओं को आकर्षित करती हैं।
(8) कुछ वस्तुएँ प्रत्येक वस्तु द्वारा आकर्षित होती हैं।

तो हम इनमें तार्किक सर्वसमता अथवा समानार्थकता नहीं पाते। यद्यपि कुछ विशिष्ट सन्दर्भों में (7) का अर्थ बदल सकता है, परन्तु इसका सामान्य और स्वाभाविक अर्थ यही है कि 'प्रत्येक वस्तु किसी न किसी वस्तु को आकर्षित करती है; और यह नहीं कि 'कोई एक वस्तु ऐसी है जिसे प्रत्येक वस्तु आकर्षित करती है। अतएव इसका प्रतीकीकृत रूप होगा :

(7) (य) (∃र) $\text{आ}_{\text{य र}}$

(8) की भी यद्यपि भिन्न व्याख्याएँ सम्भव हैं जिनमें से एक (कोई न कोई वस्तु प्रत्येक वस्तु द्वारा आकर्षित होती है) इसे (7) का समानार्थक बना देती

है, परन्तु (8) को सीधे और निश्चित रूप में समझने के लिए इसका यह अर्थ कि 'कोई एक वस्तु सभी वस्तुओं द्वारा आकर्षित होती है' अधिक उपयुक्त है। अतएव इसका प्रतीकीकृत रूप होगा :

(8) (ञर) (य) आ$_{य र}$

अन्तिम दोनों सूत्रों (7) व (8) में कुछ भ्रामक समानता है क्योंकि दोनों में प्रतिज्ञप्तीय फलन 'आ$_{य र}$' निहित है और दोनों में 'य' के साथ सर्वव्यापी परिमाणक तथा 'र' के साथ अस्तित्त्वपरक परिमाणक लागू किया गया है, परन्तु जिस क्रम में यह दोनों परिमाणक लिखे गए हैं वह दोनों में सर्वथा भिन्न हैं और यह क्रमभिन्नता दोनों के अर्थ में अन्तर ला देती है। (7) जिसमें सर्वव्यापी परिमाणक पहले आता है यह स्वीकारता है कि 'विश्व की किसी भी वस्तु को लें, कोई न कोई वस्तु अवश्य ऐसी है जिसे वह आकर्षित करती है'। (8) जिसमें अस्तित्त्वपरक परिमाणक पहले आता है वह स्वीकारता है कि 'विश्व में कोई एक वस्तु ऐसी है जिसे विश्व की सभी वस्तुएँ आकर्षित करती हैं' अर्थात् जहाँ एक ही प्रतिज्ञप्तीय फलन में दो परिमाणक लागू किए जाते हैं, तो यदि दोनों ही सर्वव्यापी अथवा अस्तित्त्व-परक हैं तो उनके क्रम-भेद से उनके अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है जैसा कि (1) व (2), (3) व (4) तथा (2) व (6) की समानार्थकता से स्पष्ट है। परन्तु जहाँ एक परिमाणक सर्वव्यापी और दूसरा अस्तित्त्वपरक है वहाँ क्रमभिन्नता महत्त्वपूर्ण है।

(7) और (8) के समान ही निम्नलिखित प्रतिज्ञप्तियाँ असमानार्थक हैं :

(9) प्रत्येक वस्तु कुछ वस्तुओं द्वारा आकर्षित होती है।

(10) कुछ वस्तुएँ प्रत्येक वस्तु को आकर्षित करती हैं।

स्पष्ट है कि यदि (9) में प्रयुक्त 'कुछ वस्तुओं से कोई न कोई वस्तु' और (10) में प्रयुक्त 'कुछ वस्तुओं से कोई एक वस्तु' समझी जाय तो (9) व (10) असमान हैं। और इनका प्रतीकीकृत रूप होगा :

(9) (र) (ञय) आ$_{य र}$

(10) (ञय) (र) आ$_{य र}$

5·41 अव्यक्त सम्बन्धों वाली प्रतिज्ञप्तियाँ

कभी-कभी सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियों को इस प्रकार प्रतिपादित किया

जाता है जैसेकि वह उद्देश्य-विधेयात्मक सरल प्रतिज्ञप्तियाँ हों। उदाहरणार्थ 'क को चोट लगी' की समुचित व्याख्या इस स्वीकारोक्ति द्वारा होती है कि 'किसी वस्तु ने क को चोट पहुँचाई।' ऐसे अव्यक्त सम्बन्ध प्रायः सकर्मक क्रियाओं के कर्मवाच्य में प्रयुक्त होने पर घटित होते हैं। अव्यक्त सम्बन्धों वाली प्रतिज्ञप्तियों के प्रतीकीकरण में हमें यह देखना होगा कि उनका प्रयोग किसलिए किया गया है। युक्तियों के प्रतीकीकरण के पीछे अभिप्रेरणा यह है कि उन्हें इस रूप में प्रस्तुत किया जाए जिससे तार्किक नियमों को लागू करके उनकी वैधता निश्चित करने में हमें सुविधा हो। अतएव किसी भी दी हुई युक्ति के बारे में हमारा लक्ष्य यह नहीं है कि हम सैद्धान्तिक दृष्टि से उसकी साङ्गोपाङ्ग व्याख्या प्रस्तुत करें बल्कि यह कि व्याख्या इतनी पूर्ण या पर्याप्त हो कि उसकी वैधता की परीक्षा की जा सके। अतः कुछ अव्यक्त सम्बन्धों को अव्यक्त रहने दिया जा सकता है और कुछ को व्यक्त करके प्रतिज्ञप्ति की व्याख्या करनी होती है।

5·42 छद्म सम्बन्ध

अव्यक्त अथवा अन्तर्निहित सम्बन्धों की चर्चा के साथ ही दार्शनिक दृष्टि से रोचक पर तर्कशास्त्र की दृष्टि से असुविधाजनक छद्म अथवा आभासी सम्बन्धों का उल्लेख वांछित है। 'इच्छा करना,' 'आशा करना', 'योजना बनाना' 'काम करना', 'विश्वास करना', इत्यादि छद्म सम्बन्ध के उदाहरण हैं। इन्हें छद्म सम्बन्ध मानने का कारण यह है कि कुछ अनुमान जो साधारण सम्बन्धों के विषय में वैध होते हैं छद्म सम्बन्धों के विषय में अवैध होते हैं या कि नहीं उतरते। यदि मैं किसी सभा में वर्तमान होता हूँ तब तो मेरे लिए सभा का अस्तित्व अनिवार्य है। परन्तु यदि मैं सभा में उपस्थित होने की केवल योजना बनाता हूँ और योजना को कार्यान्वित नहीं करता तो सभा के अस्तित्व की कोई आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार यदि मैं किसी सर्वगुण सम्पन्न स्त्री से विवाह करता हूँ तो मेरे लिए एक सर्वगुण सम्पन्न स्त्री का अस्तित्व अनिवार्य है। परन्तु यदि मैं केवल एक ऐसी स्त्री की कामना करता हूँ जोकि सर्वगुण सम्पन्न हो तो किसी भी प्रकार से इससे यह नहीं सिद्ध होता कि किसी सर्वगुण सम्पन्न स्त्री का अस्तित्व है जिससे मेरा सम्बन्ध कामना का है। राहु और केतु का अस्तित्व केवल उनमें अटल विश्वास करने से स्थापित नहीं होता, क्योंकि विश्वास करना एक छद्म सम्बन्ध है। यदि हम छद्म सम्बन्धों को वास्तविक सम्बन्ध मानने की

भूल करते हैं तो हम अनस्तित्त्व को अस्तित्त्व मानने की भूल करते हैं पर इस भूल से बचना चाहिए।

5·43 सीमित सामान्यता

अभी तक जिन सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियों की चर्चा हुई है वह असीमित सामान्यता के उदाहरण हैं जिनमें कहा गया है कि 'प्रत्येक वस्तु' अथवा 'कुछ वस्तुएँ' अथवा 'कोई भी वस्तु' अमुक-अमुक सम्बन्ध से युक्त या मुक्त है। परन्तु बहुत से सम्बन्धात्मक कथन इतने व्यापक नहीं होते। वह यह दावा नहीं करते कि प्रत्येक वस्तु अमुक-अमुक सम्बन्धों से युक्त है बल्कि यह कि कुछ विशेष दशाओं की पूरी होने पर प्रत्येक वस्तु ऐसे सम्बन्धों से युक्त है। यथा हम कह सकते हैं कि :

प्रत्येक वस्तु सभी चुम्बकों द्वारा आकर्षित होती है।

अथवा

लोहे की बनी प्रत्येक वस्तु सभी चुम्बकों द्वारा आकर्षित होती है।

इन दोनों कथनों में दूसरा पहले की अपेक्षा अधिक सीमित या संकुचित है। पहले कथन का पर्याप्त प्रतीकीकरण निम्न है—

$$(य)\ (र)\ (चु_र \supset आ_{र\,य})$$

और दूसरी प्रतिज्ञप्ति का प्रतीकीकरण निम्न होगा जहाँ 'य लोहे की बनी वस्तु है' को संक्षेप में 'लो'$_य$ माना जाए

$$(य)\ [लो_य \supset (र)\ (चु_र \supset आ_{र\,य})]$$

सम्बन्धात्मक प्रतिज्ञप्तियों को प्रतीकीकृत करने में सम्भवतः सबसे उपयुक्त विधि यह है कि हम पग-पग आगे बढ़ें। उदाहरणार्थ यदि प्रतिज्ञप्ति है

प्रत्येक अच्छा शौकिया खिलाड़ी किसी न किसी पेशेवर खिलाड़ी मात दे सकता है।

तो हम पहले चरण में उसको इस प्रकार लिखेंगे :

(य) [(य एक अच्छा शौकिया खिलाड़ी है) ⊃
(य किसी न किसी पेशेवर खिलाड़ी को मात दे सकता है)]

और फिर कोष्टकों में स्थित आपादन के आपाद्य

य किसी न किसी पेशेवर खिलाड़ी को मात दे सकता है

को परिमाणकयुक्त अभिव्यक्ति द्वारा इस प्रकार प्रतीकीकृत करेंगे

(∃ र) [(र एक पेशेवर खिलाड़ी है) ⊃ (य र को मात दे सकता है)]

और इसके बाद 'य एक अच्छा शौकिया खिलाड़ी है', 'र एक पेशेवर खिलाड़ी है' तथा 'य र को मात दे सकता है' को क्रमशः '$अ_{य}$' '$पे_{र}$' तथा '$मा_{यर}$' के रूप में संक्षेपण करके पूरी प्रतिज्ञप्ति को निम्न सूत्र के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं :

$$(य)\ [अ_{य} \supset (\exists\ र) \cdot (पे_{र} \cdot मा_{य\ र})]$$

प्रतीकीकरण की पग-पग चलने वाली प्रणाली को उन दृष्टान्तों पर भी लागू किया जा सकता है जिनमें एक से अधिक सम्बन्ध निहित होते हैं। निम्न प्रतिज्ञप्ति लीजिए :

कोई भी व्यक्ति जो प्रत्येक को प्रत्येक वस्तु देने का वचन देता है, किसी न किसी को निराश करेगा।

इसको पहले हम ऐसे लिखें :

(य) {(य एक मनुष्य है) · (र) [(र एक मनुष्य है) ⊃
(ल) (य र को ल के लिए वचन देता है)]} ⊃
(∃ व) [(व एक मनुष्य है) · (य व को निराश करता है)]

और फिर 'य एक मनुष्य है', 'य र को ल देने का वचन देता है', तथा 'य. र को निराश करता है' का संक्षेपण क्रमशः '$य_{य}$', '$वा_{य\ र\ ल}$' तथा '$नि_{य\ र}$' के रूप में करके सूत्र को इस प्रकार प्रतीकीकृत करें :

$$(य)\ \{म_{य} \cdot (र)\ [म_{र} \supset (ल)\ वा_{य\ र\ ल}]\} \supset$$

$$(\exists\ व\ (म_{व} \cdot नि_{य\ ल})$$

अभ्यास हो जाने पर सभी चरणों को व्यक्त रूप से अलग-अलग लिखने की आवश्यकता नहीं रहती।

'प्रत्येक', 'कोई एक', 'हर कोई', 'कोई भी', 'जो भी' प्रकार के परिमाणक शब्द सभी व्यक्तियों को इंगित करते हैं। 'कुछ एक', तथा 'कुछ लोग' के प्रकार के परिमाणक शब्द कुछ वस्तुओं को नहीं वरन् कुछ व्यक्तियों के द्योतक है। प्रतीकीकरण के क्रम में प्रायः इस संदर्भ को स्पष्ट करना वांछनीय होता है। पर ऐसे शब्दों से युक्त युक्तियों की वैधता की परीक्षा करने

में ऐसा करना सदैव आवश्यक नहीं है। 'सदैव', 'कभी भी नहीं' तथा 'कभी-कभी' प्रकार के शब्दों की वास्तविक सार्थकता प्राय: अनकालिक या कालक्षम रहित होती है। उदाहरण के लिए निम्न प्रतिज्ञप्तियाँ लीजिए :

अच्छे व्यक्ति सदैव मित्रों से घिरे रहते हैं।

बुरे व्यक्तियों के कभी भी मित्र नहीं होते।

कभी-कभी जिन व्यक्तियों के पत्नियां नहीं होतीं, उनके मित्र होते हैं।

इनको स्पष्ट संक्षेपकों का प्रयोग करके निम्न रूप में प्रतीकीकृत कर सकते हैं :

$$(य)\ [(अ_{य} \cdot व्य_{य}) \supset (\exists र)\ मि_{य र})]$$

$$(य)\ [(बु_{य} \cdot व्य_{य}) \supset \sim (र)\ मि_{य र})]$$

$$(य)\ \{[व्य_{य} \cdot \sim(\exists र)\ (प_{र} \cdot हो_{य र})] \cdot (ल)\ मि_{य ल}\}$$

इन शब्दों के कुछ प्रयोगों का निश्चित रूप से काल-संदर्भ होता है। जब ऐसा होता है तो उनका प्रतीकीकरण 'जब', 'जब कभी', 'जहाँ भी' आदि कालिक शब्दों की तरह ही उपलब्ध तार्किक प्रतीकों द्वारा किया जा सकता है। यथा 'जब कभी राम मोहन से बिछुड़ता है, उसे पत्र लिखता है' प्रतिज्ञप्ति की स्वीकारोक्ति है कि 'प्रत्येक वह समय जब राम और मोहन एक दूसरे से बिछुड़ते हैं ऐसे समय हैं जिनमें राम मोहन को पत्र लिखता है'। यहाँ यदि 'य एक समय है' के लिए '$स_{य}$,' 'य र को ल (समय) पर पत्र लिखता है' के लिए '$लि_{य र ल}$' तथा 'य र से ल (समय) बिछुड़ता है' के लिए '$बि_{य र ल}$' का प्रयोग करें तो उपर्युक्त प्रतिज्ञप्ति का सूत्र निम्न रूप का होगा।

$$(य)\ \{स_{य} \supset [(बि_{य र ल} \supset लि_{य र ल})]\}$$

सारांश यह है कि सम्बन्धात्मक युक्तियों का प्रतीकीकरण यदि बताए गए प्रकार से हो जाए तो उनके परीक्षण में कोई समस्या नहीं उत्पन्न होती। इसलिए उनके प्रतीकीकरण में विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

5·5 सम्बन्धावेष्टित युक्तियाँ

सम्बन्धावेष्टित युक्तियों की वैधता के परीक्षण के लिए किसी नए तार्किक नियम की अपेक्षा नहीं है। वैध युक्ति के प्रारूपों की सूची (पुनरुक्तियाँ),

सोपाधिक प्रमाण की संवलित विधि, तथा चार प्रकार के परिमाण नियम प्रत्येक ऐसी युक्ति जिसमें केवल व्यष्टि-परक चर परिमाणक हो और सत्यता फलन संयोजन हो की वैधता निर्दशित करने के लिए पर्याप्त हैं। फिर भी सम्वन्धा-वेष्टित युक्तियों के संदर्भ में परिमाणन विधियों में कुछ परिवर्तन वांछनीय हैं।

पूर्वोक्त सभी उदाहरणों के निदर्शन में सर्वव्यापी दृष्टान्तीकरण (स० दृ०) तथा अस्तित्वपरक दृष्टान्तीकरण (अ० दृ०) का प्रयोग आधार-प्रतिज्ञप्ति में परिमाणित चरों से भिन्न चर को दृष्टान्तीकृत करने के लिए और सर्वव्यापी सामान्यीकरण (स० सा०) तथा अस्तित्वपरक सामान्यीकरण (अ० सा०) का प्रयोग आधार प्रतिज्ञप्ति में स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त चरों से पृथक् चर को परिमाणित करने के लिए किया गया है। अतएव अनुमानों का रूप इस प्रकार का था :

$$(य)\ त_{य} \quad (\exists\ य)\ त_{य} \quad त_{य} \quad त_{र}$$

$$\therefore\ त_{र}\ , \quad \therefore\ त_{ल}\ , \quad \therefore (र)\ त_{र}\ , \quad \therefore\ (\exists\ व)\ त_{व}$$

परन्तु परिमाणन नियमों की अपेक्षा यह कदापि नहीं है कि v एवं ~ पृथक् चर हों। दोनों एक भी हो सकते हैं। फलतः जहाँ कहीं भी उचित हो जिस चर को परिमाणित किया गया हो उसे ही दृष्टान्तीकृत और जो चर आधार प्रतिज्ञप्ति में युक्त हो उसे ही परिमाणित किया जा सकता है। अतः उपर्युक्त अनुमानों के निम्न रूप भी हो सकते हैं :

$$(य)\ त_{य} \quad (\ \ _{य})\ त_{य} \quad त_{य} \quad त_{र}$$

$$\therefore\ त_{य}\ , \quad \therefore\ त_{य}\ , \quad \therefore (य)\ त_{य}\ , \quad \therefore\ (\exists\ र)\ त_{र}$$

इस प्रकार परिमाणक को छोड़ने से ही दृष्टान्तीकरण और परिमाणक को जोड़ने मात्र से ही सामान्यीकरण बड़ी सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।

फिर भी परिमाणन के नियमों पर लगाए गए प्रतिवन्धों को तो हमें मानना ही पड़ेगा उदाहरणार्थ यदि आधार-प्रतिज्ञप्तियाँ

$$(\exists_{य}\ )\ त_{य}$$

तथा

$(\exists_{य} \sim त_{य}$

हों तो इनमें से किसी भी एक के विषय में केवल परिमाणक को छोड़ने से दृष्टान्तीकरण प्राप्त किया जा सकता है, पर ऐसा करने के उपरान्त यदि दूसरी प्रतिज्ञप्ति में अ० इ० का प्रयोग किया जाता है तो 'य' के अतिरिक्त किसी नए चर का प्रयोग करना अनिवार्य होगा, क्योंकि 'य' का प्रयोग मुक्त रूप से पहली प्रमाण रचना में हो चुका है। यद्यपि किसी विशेष मनचाहे चर या अचर पर स० इ० का प्रयोग करके दृष्टान्तीकरण करने के लिए फिर भी हम स्वतन्त्र हैं। इस कथन की पुष्टि हम निम्न युक्ति की वैधता को निर्दशित करके कर सकते हैं :

एक व्यक्ति ऐसा भी है जिससे सभी घृणा करते हैं।

अतः कम से कम एक व्यक्ति स्वयं से घृणा करता है।

यहाँ पर 'य एक व्यक्ति है' तथा 'य र से घृणा करता है' के लिए क्रमशः '$व्य_{क}$' तथा '$घृ_{य र}$' संक्षेपकों का प्रयोग कर इस युक्ति का प्रतीकीकरण तथा प्रमाणन निम्न प्रकार से कर सकते हैं :

1. $(\exists_{य})\ [व्य_{य} \cdot (र)\ (व्य_{र} \supset घृ_{र य})] / \therefore (_{य})\ (व्य_{य} \cdot घृ_{य य})$
2. $व्य_{य} \cdot (र)\ (व्य_{र} \supset घृ_{र य})$ — 1 से अ० इ० के द्वारा
3. $(र)\ (व्य_{र} \supset घृ_{र य})$ — 2 से सरलीकरण द्वारा
4. $व्य_{य} \supset घृ_{य य}$ — 3 से स० इ० द्वारा
5. $व्य_{य}$ — 2 से सरलीकरण द्वारा
6. $घृ_{य य}$ — 4,5 से विधा० हेतु० द्वारा
7. $व्य_{य} \cdot घृ_{य य}$ — 5,6 से संयोजन द्वारा
8. $(E_{य})\ (व्य_{य} \cdot घृ_{य य})$ — 7 से श्रा० सा० द्वारा

इस युक्ति की वैधता के परीक्षण में (3) से (4) पर पहुँचने के लिए परिमाणन नियम का एकमात्र प्रयोग और साथ ही साथ चर में परिवर्तन

किया गया है । यह प्रयोग इसलिए अपेक्षित था, क्योंकि हमें 'घृ$_{यय}$' अभिव्यक्ति प्राप्त करनी थी । इसी प्रकार जब कभी परिमाणन नियम के प्रयोग के साथ ही साथ चरों को परिवर्तित किया जाता है, तो शेष अनुमान में ऐसी ही अपेक्षा होती है ।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित वाक्यों का रूपान्तर सम्बन्धों की प्रतीकावली में कीजिए :

1. मृतक मनुष्य चुगली नहीं करते ।
2. मृतक शेर जीवित श्वान से अधिक विपदपूर्ण है ।
3. कोई व्यक्ति तबतक कोई चीज नहीं सीखता जबतक वह उसे स्वयं को नहीं सिखाता ।
4. हर गुलाब में कांटा है ।
5. कोई व्यक्ति जो कुछ भी सफलता प्राप्त करता है हरेक का द्वेष भागी होगा ।
6. हर विद्यार्थी कुछ प्रश्न हल करता है, पर कोई विद्यार्थी सब प्रश्नों को हल नहीं करता ।
7. कोई प्रतियोगी जो उसे पूछे प्रश्नों का उत्तर दे देता है किसी भी पुरस्कार जिसे वह चाहे जीत सकता है ।
8. हर पुत्र का पिता होता है पर हर पिता का पुत्र नहीं होता ।
9. जो डाक्टर ऐसे बीमार का इलाज करता है जिसको कोई बीमारी नहीं है, धूर्त है ।
10. जो डाक्टर ऐसे बीमार का इलाज करता है जिसको सभी बीमारियां हैं उससे कोई भी द्वेष नहीं करेगा ।
11. हरेक किसी (न किसी) दूकान से कुछ वस्तु खरीदता है ।
12. एक दूकान है जिससे हरेक कुछ (न कुछ) खरीदता है ।
13. कुछ लोग अपनी सारी खरीददारी एक ही दूकान से करते हैं ।
14. कोई भी व्यक्ति किसी दूकान में बिकने वाली सारी चीजें नहीं खरीदता ।
15. कोई भी व्यक्ति हर दूकान से चीजें नहीं खरीदता ।
16. कोई भी दूकान का हरेक ग्राहक नहीं है ।
17. कोई भी दूकान अपनी सारी बिक्री एक ही ग्राहक को नहीं करती ।

18. किसी में सब धर्म-गुण नहीं हैं ।
19. कुछ गुण-धर्म किसी में नहीं पाए जाते ।
20. कोई दो वस्तुओं में सारे गुण-धर्म सामान्य नहीं हैं ।
21. कोई भी दो वस्तुओं के कुछ गुण-धर्म सामान्य हैं ।
22. कालिदास में महान् कवि के सभी गुण विद्यमान थे ।

(ख) निम्नलिखित सम्बन्धों का वर्गीकरण जो गुणधर्म उनमें हैं या नहीं हैं के अनुसार कीजिए :

1. पितामह होने का समस्त व्यक्तियों के कुलक से सम्बन्ध ।
2. समस्त व्यक्तियों के कुलक से समान ऊँचाई होने का सम्बन्ध ।
3. व्यक्तियों के कुलक में ठीक एक वर्ष छोटे होने का सम्बन्ध ।

(ग) यदि

$य^{पि}र$ का अर्थ है य र का पिता है

$य^{मा}र$ का अर्थ है य र की माता है

$य^{भा}र$ का अर्थ है य र का भाई है

$य^{ब}र$ का अर्थ है य र की बहन है

तो निम्नलिखित का अर्थ क्या है ?

1. $य\ (पि/मा)_र$
2. $य\ (मा/ब)_र$
3. $य\ (मा/पि)_र$
4. $य\ (ब\ भा)_र$
5. $य\ ब/मा\ पि)_र$

6

वर्गों का न्याय

6·1 वर्ग

जब हम 'मनुष्य', 'पशु', 'घोड़ा', 'हाथी' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं तो हम वर्गों के प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। जातिवाचक शब्दों के अतिरिक्त हम गुणवाचक शब्दों जैसेकि न्याय', 'सुन्दरता' आदि का भी प्रयोग करते हैं। परन्तु ये शब्द वर्ग नहीं हैं; वल्कि वर्ग के सदस्यों पर लागू होते हैं। वर्ग कोई वस्तु नहीं है जिसको हम इन्द्रियों द्वारा देख सकते हैं, वरन् वह एक साधन है जिसके द्वारा उन वस्तुओं के बारे में, जिनको हम देख सकते हैं या जिनकी कल्पना करते हैं, उन पर विचार करते हैं। वर्ग एक तार्किक निर्माण है। इसका यह अर्थ नहीं है कि तर्कशास्त्र वर्गों का आविष्कार करता है, वरन् यह है कि तार्किक या बौद्धिक प्रणालियों का उपयोग करने में वर्गों का प्रयोग होता है।

साधारणतया 'वर्ग' का अर्थ हम इकाइयों या व्यक्तियों के समूह से लगाते हैं। मनुष्यों का वर्ग मनुष्यों का समूह है। घोड़े का वर्ग घोड़ों का समूह है, परन्तु यह विचार बिल्कुल ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसे भी वर्ग हैं जिनके कि कोई सदस्य नहीं होते हैं।

प्रश्न है कि यह तार्किक निर्माण, जिसको हम वर्ग कहते हैं, जैसे निर्धारित किया जाता है? वर्ग गुणों से निर्धारित किए जाते हैं। अर्थात् कोई भी गुण वर्गों को निर्धारित करने का आधार हो सकता है और जिस व्यक्ति मे वह गुण पाया जाता है वह उस वर्ग का सदस्य माना जाता है। उदाहरण के लिए 'विचारवान् होना' एक गुण है और यह गुण जिन व्यक्तियों में पाया जाता है वे 'विचारशील व्यक्तियों के वर्ग को निर्धारित करते हैं। अतः वर्ग के प्रत्यय में दो घटक सन्निहित हैं—गुण और व्यक्ति जिनमें कि गुण पाए जाते हैं। जो गुण किसी वर्ग को निर्धारित करता है उसको वर्ग का 'गुणार्थ' कहते

हैं और जिन व्यक्तियों में गुण पाया जाता है उनके विस्तार को वर्ग का 'वस्त्वर्थ' कहते हैं। यहाँ पर वर्गों के विवेचन में हम वर्गों का वस्त्वर्थ लेंगे अर्थात् यह विवेचन वस्त्वर्थीय तर्कशास्त्र के अन्तर्गत होगा।

उपर्युक्त मान्यता का एक परिणाम उल्लेखनीय है। चूंकि वर्ग से तात्पर्य उसके वस्त्वर्थ से है इसलिए एक ही गुण को मानते हुए भी हमको भिन्न-भिन्न वर्ग प्राप्त हो सकते हैं। अर्थात् विभिन्न वर्गों का गुण एक ही हो सकता है। उदाहरण के लिए हम 'मनुष्यता' को लें। यह गुण जिन व्यक्तियों में पाया जाता है उनका विस्तार अलग-अलग समय पर अलग-अलग हो सकता है और इसलिए अलग-अलग समय पर अलग-अलग मनुष्यों के वर्ग होंगे। इसका उल्टा भी हो सकता है। एक ही वर्ग के विभिन्न निर्णायक गुण हो सकते हैं। यदि किसी जन्तुशाला में सब पशु मर गए हों, और केवल सिंह ही बचे हों तो जन्तुशाला में 'पशु' और 'कटघरे में बन्द सिंह' दोनों ही वर्ग को निर्धारित करेंगे।

यहाँ पर यह भी बता देना वांछित है कि किसी गुण द्वारा निर्धारित वर्ग स्वयं उस वर्ग का सदस्य नहीं हो सकता। यदि 'लखनऊ के निवासियों' का वर्ग स्वयं 'लखनऊ का निवासी' कहा जाए तो ऐसा कहना स्पष्टतः अर्थहीन होगा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि किसी वर्ग के सदस्य एक तार्किक प्रकार के होते हैं और वर्ग दूसरे तार्किक प्रकार का। इस विषय का अधिक विवेचन 'प्रकारों के सिद्धान्त' का अंग है जोकि उच्चतर तर्कशास्त्र का विषय है और इसलिए इसका और अधिक विवेचन हम नहीं करेंगे।

6·2 वर्गों की प्रतीकावली

हम वर्गों के लिए 'क', 'ख', 'ग' आदि अक्षरों का प्रयोग कर सकते हैं।

यदि 'क' कोई वर्ग है तो हम इसका विरोधी 'क̲' द्वारा बता सकते हैं। जहाँ पर 'क̲' को पढ़ा जाएगा 'नहीं क'। 'क̲' उस वर्ग को निर्देशित करता है जिसके सदस्य वह सब हैं जोकि 'क' के सदस्य नहीं हैं। 'क̲' को 'क' का पूरक भी कहते हैं क्योंकि जो 'क' के सदस्य नहीं हैं वह 'क̲' के सदस्य हैं। यदि 'क' लाल वस्तुओं का वर्ग है तो 'क̲' लाल-नहीं वस्तुओं का वर्ग है। चूंकि 'क̲' में वह सब वस्तुएं सम्मिलित हैं जोकि 'क' में नहीं पाई जाती है इसलिए 'क' तथा 'क̲' दोनों मिलकर 'वाद-विश्व' को सम्बोधित करते हैं। यदि हम एक आयतन वाद-विश्व के लिए खींचें और वर्ग के लिए एक वृत्त, तो दोनों का सम्बन्ध चित्र नं० 1 द्वारा अंकित कर सकते हैं।

चित्र नं० 1
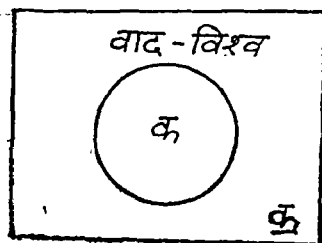
यदि वर्ग दो, तीन, या चार हैं तो उनका चित्रण चित्र नं० 2 द्वारा किया जा सकता है। प्रत्येक वर्ग के लिए 'क', 'ख', 'ग', 'घ' आदि अक्षरों का प्रयोग होगा।

चित्र नं० 2
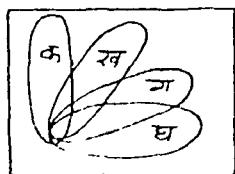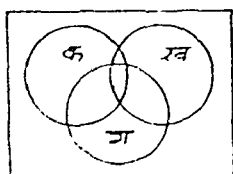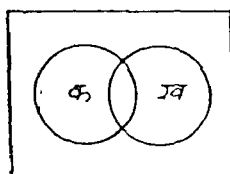
6·21 वर्गों का गुणा

यदि 'क' 'ख' दो वर्ग हैं तो हम इन दोनों के मध्य कई प्रकार के सम्बन्धों को अलग-अलग प्रतीकों द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। पहला सम्बन्ध गुणा का है। यह दो या अधिक वर्गों से एक ऐसे वर्ग की रचना करता है जोकि उनका तार्किक फल है। इस सम्बन्ध को वर्गों के बीच गुणा का चिह्न '×' लगाकर बताया जाता है।

यथा :

क × ख

का अर्थ होगा वह वर्ग जो 'क' तथा 'ख' दोनों में है। अर्थात् जिस वर्ग के सदस्य वह हैं जोकि 'क' तथा 'ख' दोनों में पाये जाते हैं। यदि 'क' कुत्तों का वर्ग है और 'ख' 'स्वामिभक्त प्राणियों' का तो 'क × ख' उनका वर्ग होगा जो कुत्ते

भी हैं और स्वामिभक्त प्राणी भी अर्थात् 'स्वामिभक्त कुत्तों' का। इस सम्बन्ध को चित्र नं० 3 द्वारा बताया जा सकता है।

चित्र नं० 3
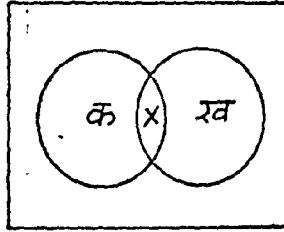
चित्र में जो भाग दोनों वृत्तों से घिरा है वही भाग वर्ग 'क × ख' को निर्देशित करता है क्योंकि उसी के सदस्य 'क' वर्ग और 'ख' वर्ग दोनों के एक ही साथ सदस्य हैं।

गणित में गुणा के चिह्न के स्थान पर कभी-कभी बिन्दु (·) का प्रयोग करते हैं और कभी दो में से किसी का भी नहीं। गुणा के चिह्न या बिन्दु के अभाव में भी अक्षरों के बीच में गुणा का सम्बन्ध समझा जाता है। यथा :

क × ख = क · ख = क ख

यद्यपि तर्कशास्त्र में अक्षरों के बीच गुणा का चिह्न प्रयुक्त होता है फिर भी गणित के गुणनफल और तार्किक गुणनफल में अन्तर है। मान लीजिए कि 'क' वर्ग के सदस्य तीन हैं और 'ख' वर्ग के दो और दोनों वर्गों के बीच में एक सदस्य सामान्य है ऐसी दशा में दोनों वर्गों का तार्किक फल एक होगा जबकि उनका गणितीय फल 6 होगा। इस भेद को बताने के लिए तार्किक गुणा के सम्बन्ध के लिए एक नये प्रतीक, '∩' का व्यवहार किया जाता है।

6·22 वर्गों का योग

वर्गों के बीच में दूसरा सम्बन्ध योग का है। यदि 'क' एक वर्ग है और 'ख' दूसरा वर्ग तो हम 'क + ख' वर्ग की कल्पना कर सकते हैं। यह वर्ग 'क' तथा 'ख' के तार्किक योग का वर्ग है और यह वर्ग उन सब सदस्यों से निर्मित है जोकि या तो 'क' या 'ख' या दोनों में पाये जाते हैं। यदि 'क' 'व्यसनी लोगों' का वर्ग है और 'ख' 'धनाढ्य लोगों' का तो यौगिक वर्ग उन सब का होगा जोकि या तो व्यसनी हैं या धनाढ्य हैं या व्यसनी और धनाढ्य दोनों हैं। यौगिक वर्ग को चित्र नं० 4 द्वारा चित्रित कर सकते हैं।

चित्र नं० 4
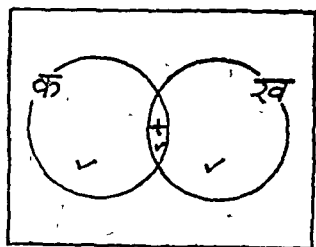
यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि यद्यपि योग का चिह्न गणित तथा तर्कशास्त्र में सामान्य है तथापि दोनों के अर्थ में थोड़ा भेद है। यदि 'क' और 'ख' दोनों के कुछ सदस्य सामान्य न होते तो तर्कशास्त्र का योग गणित के योग के समान होता। यदि 'क' के सदस्य तीन हैं और 'ख' के दो और दोनों में सामान्य एक, तो 'क+ख' के तार्किक योग के वर्ग में 6 सदस्य होंगे, जबकि दोनों वर्गों के सदस्यों का योग गणित के अनुसार होगा। तर्कशास्त्र तथा गणित के योग की क्रिया के भेद को ध्यान में रखते हुए तार्किक योग के लिए एक नये प्रतीक '$\cup$', का व्यवहार होता है।

6·23 वर्गों का समावेशन

वर्गों के बीच में समावेशन का सम्बन्ध भी पाया जाता है। इस सम्बन्ध का प्रतीक '$\subset$' माना गया है। 'क$\subset$ख' का अर्थ है कि 'क' 'ख' में समावेशित है। समावेशन सम्बन्ध की विशेषता यह है कि एक वर्ग ही दूसरे वर्ग में समावेशित होता है। कभी-कभी हम कहते हैं कि एक सदस्य वर्ग में समावेशित होता है। यह प्रयोग भ्रमात्मक है, क्योंकि जैसा पीछे कहा जा चुका है कि सदस्य और वर्ग दो विभिन्न तार्किक प्रकार हैं और इसलिए उन दोनों के लिए एक ही सम्बन्ध, समावेशित. को मानना 'प्रकार-दोष' है। कालिदास 'नाटककारों' के वर्ग के सदस्य हैं और इसलिए 'साहित्यिकों' के वर्ग के सदस्य। इस उदाहरण में नाटककारों का वर्ग साहित्यिकों के वर्ग में समावेशित है, न कि उसके सदस्य। उसको सदस्य मानना अर्थहीन है, क्योंकि नाटककारों का वर्ग साहित्यिक नहीं हो सकता।

यह सम्भव है कि एक वर्ग दूसरे वर्ग का सदस्य हो, परन्तु पहले वर्ग के सदस्य दूसरे वर्ग के सदस्य नहीं हैं। उदाहरण के लिए 'भारत के पर्वतों' का वर्ग 'भौतिक वस्तुओं' के वर्ग का सदस्य है। परन्तु 'भारत के पर्वतों' के

सदस्य 'भौतिक वस्तुओं' के वर्ग के सदस्य नहीं हैं। यदि ऐसा होता तो उसको भी एक वर्ग होना पड़ता। परन्तु किसी भौतिक वस्तु को वर्ग कहना अर्थहीन है।

समावेशन का सम्बन्ध दो वर्गों 'क' और ख' के बीच में पाया जाता है यदि और केवल यदि 'क' के सब सदस्य 'ख' के भी सदस्य हैं। 'भारत के पर्वतों' का वर्ग 'भौतिक वस्तुओं' के वर्ग में समावेशित है और पहले वर्ग के सब सदस्य दूसरे वर्ग के सदस्य है, क्योंकि भारत का प्रत्येक पर्वत भौतिक वस्तु है। समावेशित होने के सम्बन्ध को आकृति नं० 5 द्वारा अंकित कर सकते हैं।

चित्र नं० 5
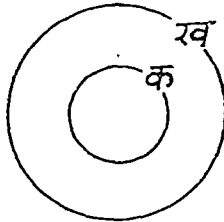
6·24 वर्गों की सर्वसमता

वर्गों के बीच में सर्वसमता का सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध को हम 'क = ख' द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। जब हम कहते हैं कि 'क' और 'ख' सर्वसम हैं तो हमारा यह अर्थ नहीं है कि उनके निर्णायक गुण एक हैं वरन् केवल यह कि उनका सदस्यता विस्तार एक ही है। सर्वसमता के लिए केवल यह आवश्यक है कि 'क' वर्ग का प्रत्येक सदस्य 'ख' वर्ग का सदस्य हो और 'ख' वर्ग का प्रत्येक सदस्य 'क' वर्ग का सदस्य हो। ऐसी दशा में 'क' और 'ख' का सदस्यता विस्तार एक ही होगा। अर्थात् दोनों वर्गों का एक ही रूप होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सर्वसमता का सम्बन्ध वर्गों के बीच में तब होता है जबकि वे एक-दूसरे में समावेशित हों। अतएव हम सर्वसमता की निम्न परिभाषा दे सकते हैं :

$$(\text{क} = \text{ख}) = (\text{क} \subset \text{ख}) \cdot (\text{ख} \subset \text{क})$$

यदि 'क' और 'ख' दो वर्ग सर्वसम हैं तो 'क' का वृत्त 'ख' के वृत्त के बिल्कुल बराबर होगा और चित्र में 'क' एवं 'ख' के वृत्त इतने एकरूप होंगे कि हमें एक ही वृत्त दिखाई देगा। चित्र नं० 6 से यह स्पष्ट है।

चित्र नं० 6
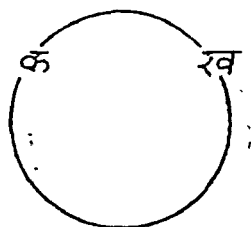
सर्वसमता, जिसका प्रतीक '=' है, की परिभाषा को जान लेने के पश्चात् हम सहज ही इसका अर्थ बता सकते हैं। वह यह है यदि 'क' वर्ग का कोई सदस्य 'ख' में नहीं है या 'ख' का 'क' में नहीं है तो 'क' और 'ख' सर्वसम नहीं हैं।

6·31 शून्य वर्ग

अभी तक वर्गों के विवेचन में हम मानते रहे हैं कि वर्गों का विस्तार है अर्थात् उन में सदस्य पाये जाते हैं। परन्तु हम ऐसे वर्ग की भी कल्पना कर सकते हैं जिसके कोई सदस्य नहीं हैं। ऐसे वर्ग को हम 'शून्य' वर्ग कह सकते हैं। और इसका प्रतीक '0' मान सकते हैं। यह वर्ग अद्वितीय है कोई भी दूसरा वर्ग इस प्रकार का नहीं हो सकता। वर्गों की विभिन्नता उनकी विस्तार भिन्नता पर आधारित है। परन्तु शून्य वर्ग में विस्तार का भेद हो नहीं सकता। शून्य वर्ग में सदस्यों की कमी या अधिकता का प्रश्न नहीं उठता।

शून्य वर्ग भी वर्ग है यद्यपि इसका विस्तार नहीं है। इसको गुण के द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए 'चौकोर वृत्तों' का वर्ग उन इकाइयों का वर्ग है जिनमें 'वृत्त' और 'चौकोर' दोनों गुण पाये जाते हैं। हमें ज्ञात है कि कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जोकि गोल और चौकोर एक साथ हो। इसलिए 'चौकोर गोलों' का वर्ग सदस्यहीन है। इसी प्रकार 'पाकिस्तान के बादशाहों' का वर्ग उन इकाइयों से बना है जोकि 'पाकिस्तान के बादशाह होने' का गुण रखती हैं। परन्तु हमें ज्ञात है कि पाकिस्तान में बादशाह नहीं होते या 'पाकिस्तान के बादशाह' का गुण किसी व्यक्ति में नहीं पाया जाता और इसलिए 'पाकिस्तान के बादशाहों का वर्ग शून्य है।

शून्य वर्ग के सन्दर्भ में 'सब' और 'कोई नहीं' का प्रयोग सार्थकता से कर सकते हैं। हम कह सकते हैं कि 'कोई भी चौकोर वृत्त आकृति नहीं है' या 'सब चौकोर वृत्त आकृतियां हैं।' ऐसा इसलिए सम्भव है क्योंकि शब्द

'सब' और 'कोई नहीं' अनिवार्यतः अस्तित्त्व का आपादन नहीं करते। परन्तु यदि हम 'कुछ' का प्रयोग शून्य वर्ग के साथ करें तो हम अवश्यमेव एक मिथ्या प्रतिज्ञप्ति प्रस्तुत करेंगे क्योंकि 'कुछ' अपने विशेष्य के अस्तित्त्व को स्वीकार करता है। उदाहरण के लिए 'कुछ पाकिस्तान के बादशाह उदार थे' कहने में हम पाकिस्तान के बादशाह के अस्तित्त्व को स्वीकार करते हैं। इसलिए शून्य वर्गों के साथ 'कुछ' का प्रयोग अवैध या विरोधात्मक है।

उपर्युक्त विवेचन से विदित है कि वर्गों का अर्थ दो प्रकार से लगाया जाता है। सब से अधिक प्रचलित अर्थ में हम वर्गों के सदस्यों का अस्तित्त्व मानते हैं। दूसरे प्रकार में वर्गों को सदस्यहीन या शून्य मानते हैं। पहले अर्थ को हम 'साधारण' और दूसरे को 'न्यूनतम' अर्थ कह सकते हैं। इन दो अर्थों के भेद को मानना महत्त्वपूर्ण है जैसाकि आगे पता चलेगा।

शून्यवर्ग अद्वितीय है, इसका प्रमाण इस प्रकार दिया जा सकता है। मानलीजिए कि वह अद्वितीय नहीं है और दो शून्य वर्ग हैं जिनको क्रमशः हम '0_1' तथा '0_2' की संज्ञा दें। यदि वह दोनों शून्य हैं तो यह असत्य है कि उनमें से किसी एक के सदस्य दूसरे के सदस्य नहीं हैं। अर्थात्

$$0_1 \subset 0_2 \text{ एवं } 0_2 \subset 0_1$$

और इसलिए वर्गों की तादात्म्यता की परिभाषा से

$$0_1 = 0_2$$

6·32 सार्विक वर्ग

शून्य वर्ग के विरोधी वर्ग को सार्विक वर्ग कहते हैं और इसका प्रतीक '1' है। सार्विक वर्ग को 'वाद विश्व' भी कहा जाता है। क्योंकि इसमें वह सभी वस्तुएं पायी जाती हैं जो कोई निर्णायक गुण रखती हैं या नहीं रखती हैं। इसकी परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं :

$$\text{क} + \bar{\text{क}} = 1$$

$$\sim 0 = 1$$

6·4 प्रतिज्ञप्तियों के चार रूपों का वर्गों द्वारा अर्थीकरण

शून्य वर्ग को मानने के पश्चात् प्रतिज्ञप्तियों के परम्परागत चार रूपों को वर्गों द्वारा अभिव्यक्त करना तथा उनके परस्पर सम्बन्ध को प्रदर्शित करना

सम्भव हो जाता है। हम चारों रूपों को वर्गों की प्रतीकावली तथा चित्रों द्वारा इस प्रकार बता सकते हैं।

प्रतिज्ञप्ति का पहला रूप 'ए' है जिसको हम 'सब उ वि हैं' से बताते हैं। यदि हम 'क' 'उ' वर्ग के लिए और 'ख' 'वि' वर्ग के लिए प्रयोग करें तो हम उन दोनों वर्गों का सम्बन्ध 'क $\underline{\text{ख}}$ = 0' से अभिव्यक्त कर सकते हैं। इस सूत्र की वैधता को समझने के लिए हम 'सब उ वि है' का साधारण अर्थ 'क ⊂ ख' लें और इस अर्थ को आयलर की आकृति पद्धति का प्रयोग कर चित्र नं० 7 द्वारा बतायें—

चित्र नं० 7
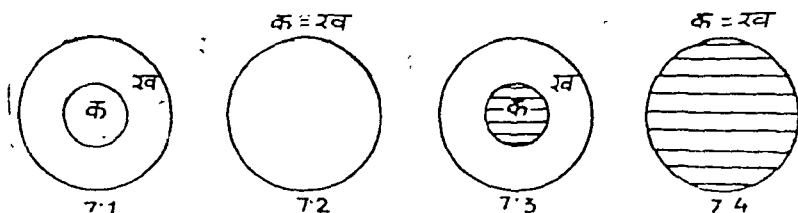
7·1	7·2	7·3	7·4
क ≠ 0, ख ≠ 0	क ≠ 0, ख ≠ 0	क = 0, ख ≠ 0	क = 0, ख = 0
कख ≠ 0, ख$\underline{\text{क}}$ ≠ 0	कख ≠ 0, ख$\underline{\text{क}}$ = 0	कख = 0, क$\underline{\text{ख}}$ = 0	कख = 0, ख$\underline{\text{क}}$ = 0
क$\underline{\text{ख}}$ = 0	क$\underline{\text{ख}}$ = 0		क$\underline{\text{ख}}$ = 0

आयलर की पद्धति में वर्गों का साधारण अर्थ लगाया जाता है, परन्तु आधुनिक काल में दो अर्थ लगाये जाते हैं। इस भेद का संकेत शून्य वर्गों को आड़ी रेखाओं से भरकर बता सकते हैं। 'क ⊂ ख' के भी दो चित्र हो सकते हैं: (1) जिसमें 'क' का वृत्त 'ख' से छोटा है और (2) जिसमें 'क' और 'ख' के वृत्त बिल्कुल बराबर हैं (देखिये, चित्र 7·1 और 7·2)। चित्र 7·3 में 'क' को शून्य माना गया है, परन्तु 'ख' को शून्य नहीं माना गया है। चित्र 7·4 में 'क' और 'ख' दोनों को शून्य माना गया है। चारों चित्रों में 'क $\underline{\text{ख}}$ = 0' है।

वर्गों के साधारण और न्यूनतम अर्थों के भेद को मानते हुए 'क $\underline{\text{ख}}$ = 0' के आयलर के चार चित्रों को हम वेन पद्धति से चित्र नं० 8 द्वारा अंकित कर सकते हैं।

चित्र नं० 8
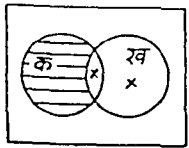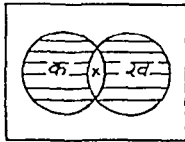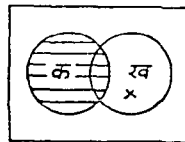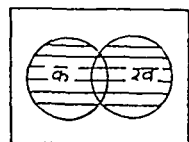
यह चारों चित्र संएकित चित्र नं० 9 के वियोजी विस्तार हैं।

चित्र नं० 9
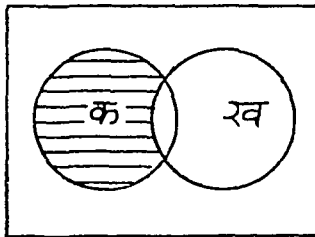
यह चित्र 'ए' प्रतिज्ञप्ति को सम्पूर्णतया व्यक्त करता है चाहे उसमें आये हुए वर्ग शून्य हों या न हों। प्रतिज्ञप्ति इ 'कोई उ वि नहीं है' को वर्गों की प्रतीकावली में इस प्रकार अभिव्यक्त करेंगे; 'क ख = 0' और इसका चित्र वेन-पद्धति द्वारा निम्न प्रकार (नं० 10) का होगा।

चित्र नं० 10
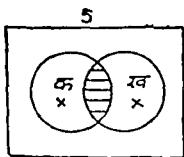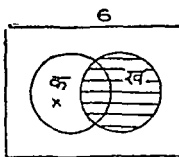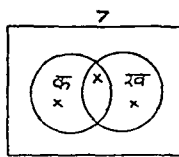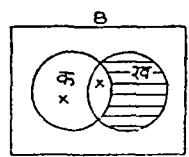
इन चारों चित्रों में सामान्य बात यह है कि 'क' 'ख' शून्य है और इसलिए इस सामान्यता का प्रदर्शन चित्र नं० 11 द्वारा किया जा सकता है जिसमें वर्ग 'क $\underline{\text{ख}}$' तथा 'ख $\underline{\text{क}}$' या तो शून्य है या नहीं हैं।

चित्र नं० 11

इ : कोई क ख नहीं है। क ख = 0
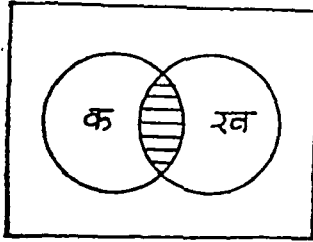
'आइ' तथा 'ओ', 'ए' तथा 'इ' के व्याघाती होने के कारण उनका सूत्र सहज ही सर्वसमता के चिह्न का निषेध करके प्राप्त हो जाता है। चूंकि 'ए' का सूत्र है 'क $\overline{ख}$ = 0' अतः 'आ' का सूत्र है 'क $\overline{ख}$ ≠ 0'। इसी प्रकार चूंकि 'इ' का सूत्र है 'क ख = 0' अतः 'आइ' का सूत्र है 'क ख ≠ 0'।

'आइ' के वेन चित्र निम्न प्रकार के हैं (चित्र नं० 12) :

चित्र नं० 12
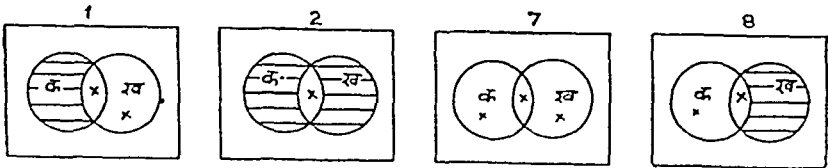
और इन चारों चित्रों की सामान्यता का प्रदर्शन निम्नांकित (चित्र नं० 13) से हो सकता है—

चित्र नं० 13

आइ : कुछ क ख हैं। क ख ≠ 0
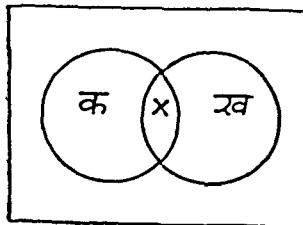
'ओ' का चित्रण वेन आकृतियों द्वारा निम्न (चित्र नं० 14) से होगा—

चित्र नं० 14
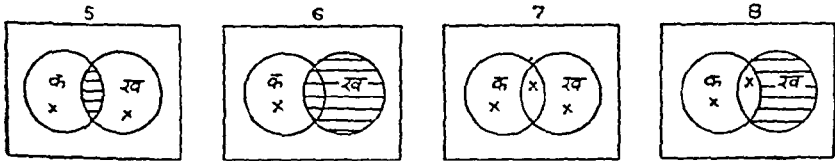
इन चारों चित्रों के सामान्य तथ्य 'क $\underline{ख} \neq 0$' को निम्नांकित चित्र नं० 15 से प्रदर्शित किया जा सकता है—

चित्र नं० 15

ओ : कुछ क ख नहीं है। क $\underline{ख} \neq 0$
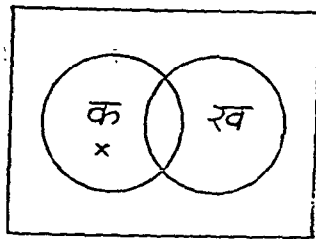
6·5 परम्परागत विरोध-चतुस्र का संशोधन

चारों प्रतिज्ञप्तियों के परस्पर सम्बन्ध को वेन आकृतियों के द्वारा सहज ही बताया जा सकता है। चारों रूपों के परस्पर सम्बन्ध का प्राचीन काल से विरोध चतुस्र द्वारा दिग्दर्शन कराया जाता है। यहाँ पर हम चारों प्रतिज्ञप्तियों के सम्बन्ध को उनके सूत्रों और चित्रों द्वारा बतायेंगे। पहले हम वर्गों को सदस्यवान् मानकर सम्बन्ध बतायेंगे।

यदि 'ए' प्रतिज्ञप्ति सत्य है तो 'आइ' सत्य होगी 'इ' असत्य और 'ओ' असत्य। सूत्र और चित्र (नं० 16) इस प्रकार हैं :—

चित्र नं० 16

ए प्रतिज्ञप्ति
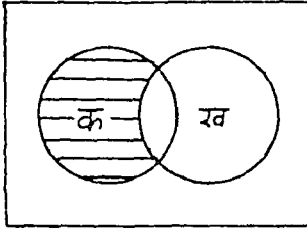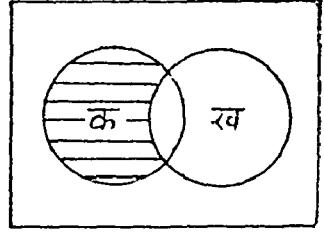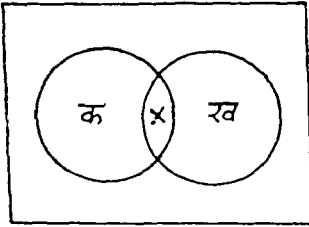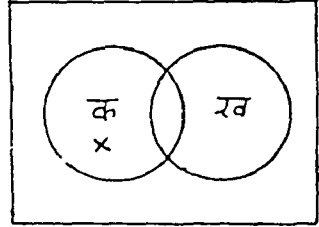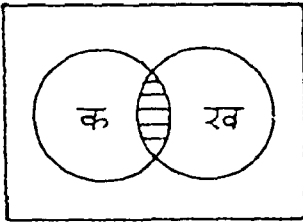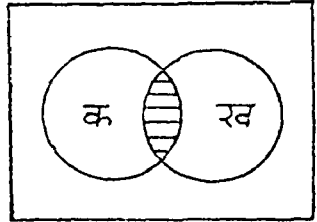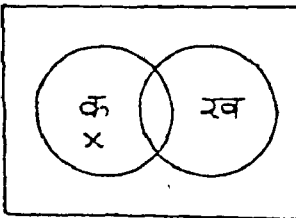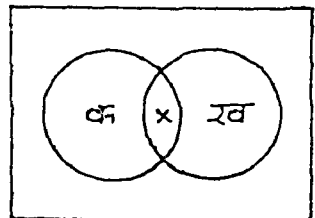
चित्र नं० 17

इ प्रतिज्ञाप्त

सत्य असत्य
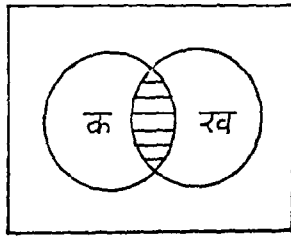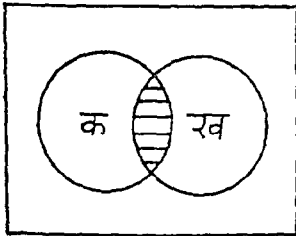
इ : क ख = 0 सत्य

इ : क ख = 0 असत्य
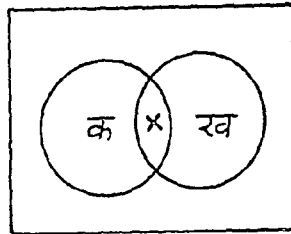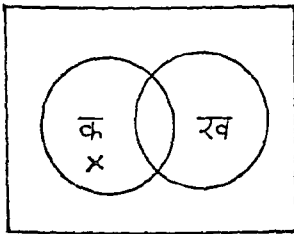
ओ : क ख̲ ≠ 0 सत्य
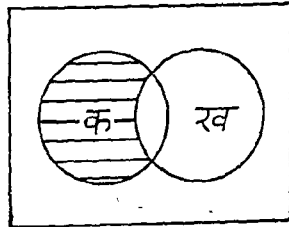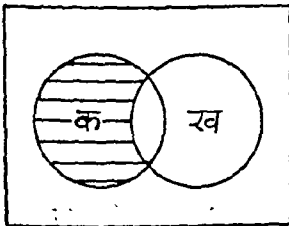
आइ : क ख ≠ 0 सत्य

असत्य

ए : क ख̲ = 0 असत्य

ए : क ख̲ = 0 संदिग्ध
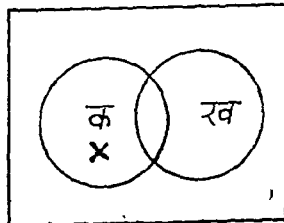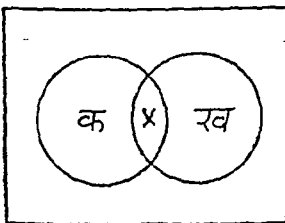
आइ : क ख ≠ 0 असत्य

ओ : क ख̲ ≠ 0 संदिग्ध

चित्र नं० 18

आइ प्रतिज्ञप्ति

सत्य
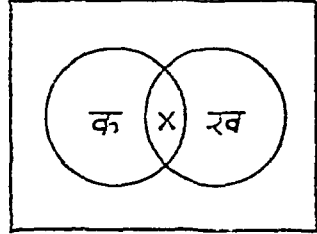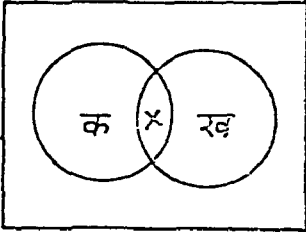
असत्य

आइ : क ख≠0 सत्य

आइ : क ख≠0 असत्य
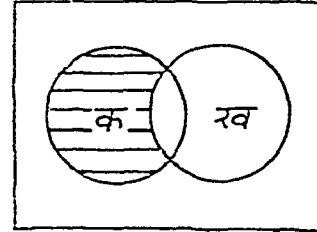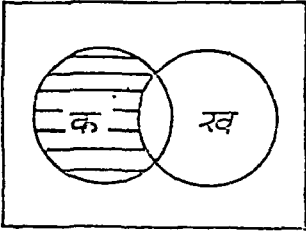
ए : क ख̲=0 संदिग्ध

ए : क ख̲=0 असत्य
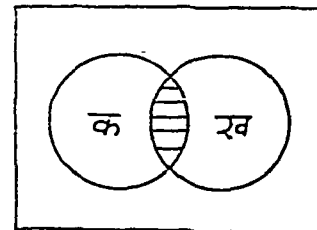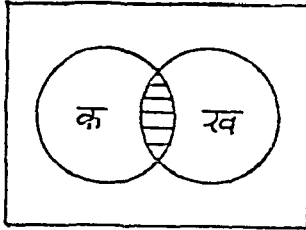
इ : क ख=0 असत्य

इ : क ख=0 सत्य
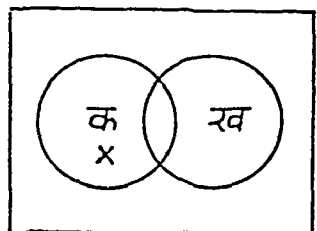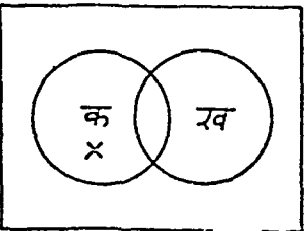
ओ : क ख̲≠0 संदिग्ध

क ख̲≠0 सत्य

चित्र नं० 19

ओ प्रतिज्ञप्ति

सत्य | असत्य
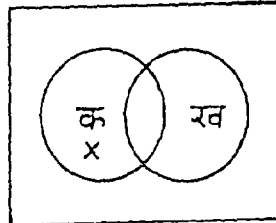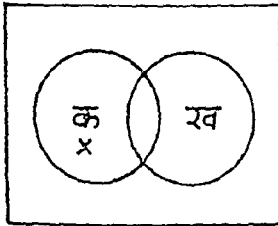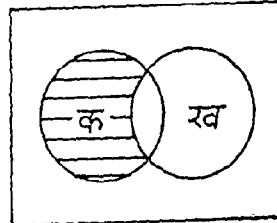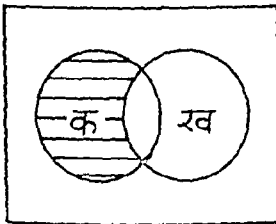
ओ : क ख≠0 सत्य | ओ : क ख≠0 असत्य

ए : क ख = 0 असत्य | ए : क ख = 0 सत्य
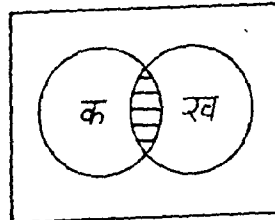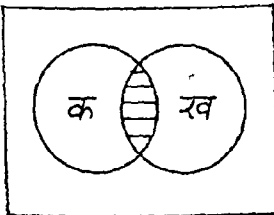
इ : क ख = संदिग्ध | इ : क ख = 0 असत्य
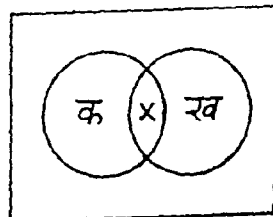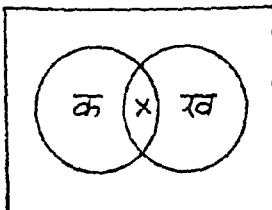
आइ : क ख≠0 संदिग्ध | आइ : क ख ≠0 सत्य

संक्षेप में हम इन सम्बन्धों को आपादन तथा निषेध के चिह्नों का प्रयोग कर इस प्रकार बता सकते हैं :

'ए' सत्य : 'ए ⊃ आइ', 'ए ⊃ ∼ओ'; 'ए ⊃ ∼इ'

'इ' सत्य : 'इ ⊃ ∼आइ'; 'इ ⊃ ∼ओ; 'इ ⊃ ∼ए'

'आइ' सत्य : 'आइ ⊃ ∼इ'

'ओ' सत्य : 'ओ ⊃ ∼ए'

6·51 चारों प्रतिज्ञप्तियों का परस्पर सम्बन्ध

अब हम उद्देश्य वर्ग को शून्य मानकर प्रतिज्ञप्तियों का परस्पर सम्बन्ध वेन आकृतियों की सहायता से बता सकते हैं। उन आकृतियों के अनुसार स्थिति यह है—

'ए' के चित्र हैं 1, 2, 3, 4.

'इ' के चित्र हैं 3, 4, 5, 6.

'आइ' के चित्र हैं 1, 2, 7, 8.

'ओ' के चित्र हैं 5, 6, 7, 8.

चित्रों की संख्या पर ध्यान देने से पता लगेगा कि प्रतिज्ञप्तियों का परस्पर सम्बन्ध दो दशाओं में विभक्त किया जा सकता है। (i) जब यह ज्ञात है कि विधेय वर्ग शून्य है और (ii) जब एक सार्विक प्रतिज्ञप्ति की सत्यता ज्ञात है, परन्तु यह पता नहीं कि विधेय वर्ग में सदस्य है या नहीं।

(i) दशा में यदि 'ए' सत्य है तो 'इ' भी सत्य है और 'आइ' तथा 'ओ' असत्य है। 'आइ' और 'ओ' सदैव असत्य होंगे क्योंकि विधेय को सदस्यहीन तथा सदस्यवान् मानना व्याघात है।

(ii) दशा में 'ए' की सत्यता से 'ओ' की असत्यता और 'इ' की सत्यता से 'आइ' की असत्यता निश्चित होती है। 'आइ' तथा 'ओ' के बारे में कोई निश्चित अनुमान नहीं किया जा सकता जबतक कि उद्देश्य वर्ग की शून्यता या अशून्यता न निश्चित की जाय। यदि वह वर्ग शून्य है तो उसका विवेचन (i) दशा के अनुसार होगा और यदि वह अशून्य है तो उसका सम्बन्ध वैसा होगा जैसा उल्लिखित वर्गों का अस्तित्व मानकर बताया गया है।

संक्षेप में हम सम्बन्धों को '⊃' और '∼' के द्वारा निम्न प्रकार से बता सकते हैं—

(i) 'ए' : 'ए ⊃ इ'; 'ए ⊃ ∼आइ'; 'ए ⊃ ∼ओ'

'इ' : 'इ ⊃ ए'; 'इ ⊃ ∼आइ'; 'इ ⊃ ∼ओ'

आइ }
ओ } सदैव असत्य जबकि उद्देश्य वर्ग शून्य है।

(ii) 'ए' : 'ए ⊃ ∼ओ'

'इ' : 'इ ⊃ ∼आइ'

'आइ' तथा 'ओ' : कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता जबतक वर्गों की शून्यता ज्ञात न हो।

6·6 वर्गों की प्रतीकावली द्वारा अनन्तरानुमान

विरोध-चतुरस्र अनन्तरानुमान का एक प्रकार है। इसके द्वारा किसी एक रूप की प्रतिज्ञप्ति की सत्यता या असत्यता ज्ञात होने पर शेष तीनों रूपों की सत्यता या असत्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। अनन्तरानुमान दो और प्रक्रियाओं द्वारा भी किया जा सकता है जिनको 'परिवर्तन' तथा 'प्रतिवर्तन' की संज्ञा दी जाती है।

परिवर्तन में एक प्रतिज्ञप्ति से दूसरी प्रतिज्ञप्ति का अनुमान प्रतिज्ञप्ति के गुण को बिना बदले हुए, परन्तु उद्देश्य और विधेय का पदान्तरण द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए 'कोई उ वि नहीं है' का परिवर्तन होगा 'कोई वि उ नहीं है' इसमें पहली प्रतिज्ञप्ति को 'परिवर्त्य' और दूसरी को 'परिवर्तित' कहते हैं।

प्रतिवर्तन में एक प्रतिज्ञप्ति से दूसरी प्रतिज्ञप्ति का अनुमान पहली प्रतिज्ञप्ति के गुण को बदलकर (परन्तु पदों को बदलकर नहीं) किया जाता है। उदाहरण के लिए 'सब उ वि हैं' का प्रतिवर्तन करके हम प्राप्त करते हैं 'कोई उ न-वि नहीं हैं। इसमें पहली प्रतिज्ञप्ति को 'प्रतिवर्त्य' और दूसरे को 'प्रतिवर्तित' कहते हैं। इन प्रक्रियाओं के ऊपर एक सामान्य नियम लागू है कि कोई पद अनुमानित प्रतिज्ञप्ति में व्याप्त नहीं होगा जोकि मूल प्रतिज्ञप्ति में व्याप्त नहीं था। किसी पद को 'व्याप्त' कहते हैं जबकि उसके सब सदस्यों के बारे में कोई प्रस्ताव रक्खा जाय। 'सब' और 'कोई नहीं' जब किसी पद के विशेषण होते हैं तो वह व्याप्त माना जाता है। जब किसी पद से सम्बोधित सदस्यों में से कुछ के बारे में ही कोई प्रस्ताव किया जाता है तो हम ऐसे पद को 'अव्याप्त' कहते हैं।

चारों प्रतिज्ञप्तियों के परिवर्तित तथा प्रतिवर्तित रूप इस प्रकार हैं।

	मूल प्रतिज्ञप्ति	परिवर्तित	प्रतिवर्तित
ए	सब उ वि हैं।	कुछ वि उ हैं।	कोई उ न-वि नहीं हैं।
इ	कोई उ वि नहीं है।	कोई वि उ नहीं है।	सब उ न-वि हैं।
आइ	कुछ उ वि हैं।	कुछ वि उ हैं।	कुछ उ न-वि नहीं हैं।
ओ	कुछ उ वि नहीं हैं।	×	कुछ उ न-वि हैं।

अब हम इन प्रक्रियाओं को प्रतीकीकृत करें। ऐसा करने में पहले हम यह मानलें कि प्रतिज्ञप्तियों में प्रयुक्त वर्ग सदस्यवान् हैं। यदि मूल प्रतिज्ञप्ति 'ए' 'सब क ख हैं' तो उसका 'आइ' 'कुछ ख क है'। पहले का सूत्र है 'क ख̲ = 0'। परिवर्तित 'कुछ ख क है' का सूत्र होगा 'ख क ≠ 0'। मूल प्रतिज्ञप्ति का प्रतिवर्तित होगा 'कोई क न-ख नहीं है' अर्थात् 'क ख̲ = 0'।

यदि मूल प्रतिज्ञप्ति 'इ', 'कोई क ख नहीं है' है तो इसका परिवर्तित होगा 'कोई ख क नहीं है' और प्रतिवर्तित होगा 'सब क न-ख हैं'। सूत्रों की भाषा में मूलप्रतिज्ञप्ति 'क ख = 0' है, परिवर्तित 'ख क = 0' और प्रतिवर्तित 'क ख̳ = 0' (चूंकि ख̳ = ख, इसलिए 'क ख̳ = 0' = 'क ख = 0')। यदि मूल प्रतिज्ञप्ति 'आइ' 'कुछ क ख हैं' है तो परिवर्तित प्रतिज्ञप्ति 'कुछ ख क हैं' और प्रतिवर्तित कुछ क न-ख नहीं है' होगी। सूत्रों की भाषा में यदि 'क ख ≠ 0' मूल सूत्र है तो परिवर्तित 'ख क ≠ 0' और प्रतिवर्तित 'क ख̳ ≠ 0' (चूंकि ख̳ = ख के, इसलिए क ख̳ ≠ 0 = क ख ≠ 0) है।

यदि मूल प्रतिज्ञप्ति 'ओ' 'कुछ क ख नहीं है' है तो उसका परिवर्तित नहीं बनसकता और प्रतिवर्तित 'कुछ क न-ख है' है। उसका परिवर्तन नहीं होता क्योंकि उसका विधेय व्याप्त है और हम प्रतिज्ञप्ति का गुण नहीं बदल सकते यदि पदों का पक्षान्तरण करें तो विधेय के स्थान पर उद्देश्य आ जायगा और तब वह व्याप्त हो जायगा। परन्तु नियम है कि जो पद मूल प्रतिज्ञप्ति में व्याप्त नहीं है वह निष्कर्ष में भी व्याप्त नहीं हो सकता और इसलिए 'ओ' का परिवर्तन नहीं हो सकता। सूत्रों की भाषा में मूलवाक्य 'क ख̲ ≠ 0' है और प्रतिवर्तित 'क ख̲ ≠ 0'।

संक्षेप में;

'ए' का परिवर्तन होता है 'आइ' में और प्रतिवर्तन 'इ' में।

'इ' का परिवर्तन होता है 'इ' में और प्रतिवर्तन होता 'ए' में।

'आइ' का परिवर्तन होता है 'आइ' में और प्रतिवर्तन होता है 'ओ' में।

'ओ' का परिवर्तन नहीं होता और प्रतिवर्तन होता है 'आइ' में।

6·7 वर्ग व न्यायवाक्य

अनन्तरानुमान में एक ही प्रतिज्ञप्ति से कोई निष्कर्ष निकलता है। परन्तु हम दो प्रतिज्ञप्तियों के संयोग से भी निष्कर्ष पाते हैं। ऐसे अनुमान को 'सान्तरानुमान' कहते हैं क्योंकि उसमें निष्कर्ष और मूल प्रतिज्ञप्ति के बीच में अन्तर (दूसरी प्रतिज्ञप्ति द्वारा) होता है। सान्तरानुमान कई प्रकार के होते हैं। यहाँ पर हम केवल उनमें से एक का जिसको 'निरुपाधिक न्यायवाक्य' कहते हैं, विवेचन करेंगे।

निरुपाधिक न्यायवाक्य वह युक्ति है जिसमें सरल निरुपाधिक प्रतिज्ञप्तियों के दो वर्गों के बीच में किसी एक तीसरे वर्ग के सम्बन्ध द्वारा अनुमान किया जाता है। उदाहरण के लिए 'सब स्नातक मतदान कर सकते हैं। इस घर के सब सदस्य स्नातक हैं। इसलिए इस घर के सब सदस्य मतदान कर सकते हैं' के बीच में एक सम्बन्ध जोकि 'स्नातक हैं' की मध्यस्थता द्वारा निष्कर्ष स्थापित किया जाता है।

एक न्यायवाक्य में सदैव तीन पद होते हैं, जिनको क्रमशः 'साध्य', 'पक्ष', और 'हेतु' कहा जाता है। 'साध्य वह है जोकि निष्कर्ष में विधेय होता है। 'पक्ष' वह है जोकि निष्कर्ष में उद्देश्य होता है। 'हेतु' वह है जिसके द्वारा साध्य और पक्ष के बीच में सम्बन्ध स्थापित होता है। प्रत्येक पद न्यायवाक्य में दो-दो बार आता है। उपर्युक्त उदाहरण में 'जो मतदान कर सकते हैं' साध्य है; 'इस घर के सब सदस्य' पक्ष तथा 'स्नातक' हेतु है। जिस प्रतिज्ञप्ति में साध्य आता है उसको 'मुख्य-आधार वाक्य' और जिसमें पक्ष आता है 'गौण-आधार वाक्य' कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में 'सब स्नातक मतदान कर सकते हैं' मुख्य-आधार वाक्य और 'इस घर के सब लोग स्नातक हैं' गौण-आधार वाक्य है।

6·71 न्यायवाक्य की वैधता के नियम

(1) किसी न्यायवाक्य में तीन और केवल तीन ही पद होने चाहिए क्योंकि तीन से कम पदों में सम्बन्ध नहीं स्थापित किया जा सकता और तीन से अधिक पदों के होने पर कई न्यायवाक्य हो जाते हैं

(2) हेतु को आधार वाक्यों में कम से कम एक बार व्याप्त होना चाहिए। इस नियम की आवश्यकता को उदाहरण से बताया जा सकता है। यदि हम कहें कि 'सब धातुएँ भारी होती हैं और पानी भारी होता है' तो हम धातुओं और पानी के सम्बन्ध के बारे में कोई अनुमान नहीं प्राप्त कर सकते।

हम नहीं कह सकते कि पानी और धातु एक-दूसरे के अन्दर या बाहर या कुछ अन्दर या कुछ बाहर हैं। हम दूसरा उदाहरण लें 'कुछ देशवासी कांग्रेसी हैं। कुछ हरिजन देशवासी हैं'। हम क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं? हम 'क' देशवासियों के लिए 'ख' कांग्रेसियों के लिए और 'ग' हरिजनों के लिए प्रयोग करें तो हम दो सूत्र प्राप्त करते हैं।

$$क\ ख \neq 0$$

$$ग\ ख \neq 0$$

'क' और 'ग' (अर्थात् हरिजन और कांग्रेसियों) के बीच का सम्बन्ध अज्ञात है। क्योंकि हेतु देशवासी एक बार भी व्याप्त नहीं है।

(3) दो नकारात्मक आधार वाक्यों से कोई निष्कर्ष नहीं अनुमानित किया जा सकता। उदाहरण के लिए—

'कोई भी दर्शनशास्त्र की पुस्तक मनोरंजक नहीं होती।'

'कोई भी मनोरंजक वस्तु कठिन नहीं होती।'

इसलिए '?'

आधार वाक्यों से 'दर्शनशास्त्र की पुस्तकें' और 'मनोरंजक वस्तुओं' के बीच के सम्बन्ध का अनुमान करना असम्भव है। यह बात चित्र नं० 20 से स्पष्ट हो सकती है। मान लीजिए 'क' = 'दर्शनशास्त्र की पुस्तकें, 'ख' = 'मनोरंजक वस्तुएँ' और 'ग' = 'कठिन वस्तुएँ' हैं तो पहली प्रतिज्ञप्ति का सूत्र है 'क ख = 0' और दूसरी का 'क ग = 0'। अब हम जिसका निषेध किया गया है उसको काट दें और देखें कि 'क' और 'ग' के बीच में कोई सम्बन्ध स्थापित हुआ या नहीं। स्पष्ट है कि कोई सम्बन्ध नहीं स्थापित हुआ।

चित्र नं० 20
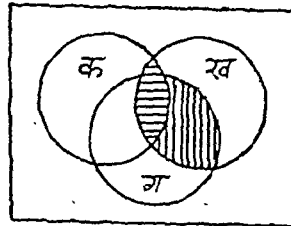
(4) यदि कोई भी आधार-वाक्य नकारात्मक है तो निष्कर्ष भी

नकारात्मक होगा। मानी हुई बात है कि यदि एक वर्ग दूसरे में समावेशित है और तीसरा वर्ग हेतु से बहिष्कृत है तो दूसरे दोनों भी बहिष्कृत होंगे। उदाहरण लीजिए—

'कोई भी खाने वाली वस्तुएँ विषैली नहीं होतीं।'

'आम खाने वाली वस्तुएँ हैं।'

∴ 'आम विषैले नहीं होते।'

यदि 'क' = 'खाने वाली वस्तुएँ', 'ख' = 'विषैली वस्तुएं' और 'ग' = 'आम', तो

$$क\ ख = 0$$
$$ग\ \underline{क} = 0$$
$$\therefore ग\ ख = 0$$

इनका चित्र बनाने में यदि हम शून्य को काट दें तो नकारात्मक निष्कर्ष की अनिवार्यता स्पष्ट हो जायगी।

चित्र नं० 21
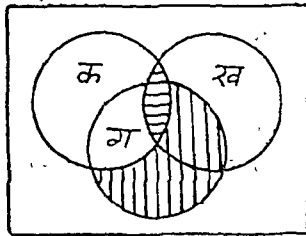
(5) निष्कर्ष नकारात्मक नहीं हो सकता जबतक कि आधार-वाक्यों में से एक भी नकारात्मक न हों। इस नियम को भी (4) नियम की तरह चित्रित किया जा सकता है। यह (4) नियम का परिवर्त्य है।

(6) कोई भी पद निष्कर्ष में व्याप्त नहीं किया जा सकता जोकि उसके आधार-वाक्यों में व्याप्त न हो। यदि कोई पद अपने पूरे विस्तार में दूसरे पदों से सम्बन्धित नहीं है तो हम कोई भी निष्कर्ष उसके पूरे विस्तार के बारे में नहीं निकाल सकते।

(7) दो अंशव्यापी आधार-वाक्यों से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता। यदि आधार-वाक्य अंशव्यापी है तो या तो वह 'आइ-आइ', 'ओ-ओ' या एक 'आइ' और एक 'ओ' यही हो सकते हैं। यदि वह 'आइ-आइ' है तो नियम (2) से कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता क्योंकि हेतु अव्याप्त होगा। यदि वह 'ओ-ओ' है तो नियम (3) से निष्कर्ष नहीं निकल सकता क्योंकि दोनों

नकारात्मक हैं। यदि 'आइ-ओ' हैं या 'ओ-आइ' तो निष्कर्ष नियम (4) से नकारात्मक होगा। यदि हेतु व्याप्त है तो यह 'ओ' के विधेय में व्याप्त होगा। अतः नकारात्मक निष्कर्ष में विधेय पद व्याप्त होगा और चूंकि यह आधार-वाक्य में व्याप्त नहीं था अतः नियम (6) भंग होगा और कोई निष्कर्ष नहीं निकल सकता।

(8) यदि दो में से कोई आधार-वाक्य अंशव्यापी है तो निष्कर्ष अंशव्यापी होगा। इस नियम की वैधता भी नियम (7) की तरह बतायी जा सकती है।

(9) इन सामान्य नियमों के अतिरिक्त कुछ नियम अलग-अलग आकृतियों के हैं। चूंकि यह सामान्य नियमों की विभिन्न आकृतियों पर लागू करके बनाये गये हैं इसलिए इनको अधिक स्पष्टीकरण के बिना ही बता दिया जायगा।

(10) पहली आकृति में गौण आधार-वाक्य स्वीकारात्मक और मुख्य आधार-वाक्य सर्वव्यापी होंगे।

(11) दूसरी आकृति में एक आधार-वाक्य नकारात्मक और मुख्य आधार-वाक्य सर्वव्यापी होगा।

(12) तीसरी आकृति में गौण आधार-वाक्य स्वीकारात्मक और निष्कर्ष अंशव्यापी होगा।

(13) चौथी आकृति में यदि कोई भी आधार-वाक्य नकारात्मक है तो मुख्य-आधारवाक्य सर्वव्यापी होगा। यदि मुख्य आधारवाक्य स्वीकारात्मक है तो गौण आधार-वाक्य सर्वव्यापी होगा। और यदि गौण आधार-वाक्य स्वीकारात्मक है तो निष्कर्ष अंशव्यापी होगा।

6·72 न्यायवाक्य के सिद्ध संयोग

न्यायवाक्य के सामान्य और विशेष नियमों के आधार पर सिद्ध संयोगों की संख्या निश्चित की गई है। वह इस प्रकार है :

आ I ए ए ए, ए ए आइ, ए आइ आइ, इ ए इ, इ ए ओ, इ आइ ओ।
$6-2=4$

आ II ए इ इ, ए इ ओ, ए ओ ओ, इ ए ओ, इ ए इ, इ ए ओ, इ आइ ओ।
$6-2=4$

आ III ए ए आइ, ए आइ आइ, इ ए ओ, इ आइ ओ, आइ ए इ, ओ ए ओ।
$6-2=4$

आ IV ए ए आइ, ए इ इ, ए इ ओ, आइ ए आइ, इ ए ओ, इ आइ ओ।
6 − 3 = 3

हम देखते हैं कि प्रत्येक आकृति में 6 शुद्ध संयोग हैं। अर्थात् सिद्ध संयोगों की कुल संख्या चौबीस (24) है। परन्तु यह चौबीस की संख्या तभी मान्य है जबकि हम वर्गों का साधारण अर्थात् सदस्यात्मक अर्थ लें। यदि हम वर्गों का न्यूनतम अर्थात् शून्यात्मक अर्थ लें तो उनकी संख्या चौबीस से घटकर पन्द्रह ही रह जायगी। हमको उन सब सिद्ध संयोगों को त्याग देना होगा जिनमें आधारवाक्यों के वर्गों का अर्थ अनिश्चित है, परन्तु निष्कर्ष में सदस्यात्मक अर्थ निश्चित हो जाता है जोकि एक दोष है उदाहरण के लिए—

सब देशद्रोही दण्डित होंगे।
काश्मीर को भारत का अंग न मानने वाले देशद्रोही हैं।
∴ कुछ काश्मीर को भारत का अंग न मानने वाले दण्डित होंगे।

इसमें साध्य और पक्ष का अर्थ आधारवाक्यों में अनिश्चित है। परन्तु निष्कर्ष में पक्ष सदस्यवान् हो जाता है और इसलिए यह संयोग असिद्ध है।

6·73 न्यायवाक्य के दो प्रकार

उपर्युक्त पन्द्रह (15) सिद्ध संयोग चार आकृतियों में विभक्त हैं। परन्तु संयोगों को इस प्रकार विभाजित करना कृत्रिम है। उसका कोई तार्किक आधार नहीं है। विभाजन इस बात पर निर्भर है कि न्यायवाक्य किस प्रकार भाषा में व्यक्त किये जा सकते हैं। आकृति का आधार हेतु की स्थिति है। हेतु की स्थिति भाषा की विशेषताओं पर निर्भर है। इस बात का प्रमाण यह है कि एक आकृति के संयोग दूसरी आकृतियों में समानार्थक हो सकते हैं।

न्यायवाक्यों का संयोगों में भी बद्ध होना कृत्रिम है। संयोग अधिकतर आधार-वाक्य के क्रम पर निर्भर हैं, परन्तु आधार-वाक्यों का क्रम महत्त्वपूर्ण नहीं है और किसी भी प्रकार से युक्तियों की रचना के स्वरूप को प्रभावित नहीं करता। उदाहरण लीजिए—

सब भौतिक वस्तुएँ विनाशवान् हैं।
मकान भौतिक वस्तुएं हैं।
∴ मकान विनाशवान् हैं।

हम इसी युक्ति को ऐसे भी रख सकते थे—

मकान विनाशवान् हैं।

∵ मकान भौतिक वस्तुएँ हैं। और

सब भौतिक वस्तुएँ विनाशवान् हैं।

अर्थात् आधार-वाक्यों का क्रम निष्कर्ष को प्रभावित नहीं करता।

यदि हम प्रतिज्ञप्तियों के लिए 'प' 'फ' 'व' का प्रयोग करें तो हमें विदित होगा कि न्यायवाक्य का रूप सदैव 'यदि प · फ, तो व' होता है। तर्कशास्त्र की दृष्टि से यह 'यदि फ · प तो व' के बिल्कुल समान है। क्योंकि हम जानते हैं कि किसी भी मिश्र प्रतिज्ञप्ति में संयोज्यों का क्रम बदलने से संयोजित प्रतिज्ञप्ति का अर्थ नहीं बदलता।

जिस प्रकार आधार-वाक्यों का क्रम महत्त्वहीन है इसी प्रकार प्रतिज्ञप्ति में वर्गों का क्रम भी महत्त्वहीन है। क्योंकि वर्गों के प्रतीकों के अनुसार

क ख = ख क, क $\underline{\text{ख}}$ = $\underline{\text{ख}}$ क, ख $\underline{\text{क}}$ = $\underline{\text{क}}$ ख।

हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि चूँकि वर्गों और आधार-वाक्यों का संयोगों में वर्गीकरण निरर्थक है। वस्तुतः सूक्ष्म तार्किक विश्लेषण के फलस्वरूप केवल दो प्रकार के न्यायवाक्य दिखाई पड़ते हैं। (1) वह जिनके दोनों आधार-वाक्य सर्वव्यापी होते हैं और (2) वह जिनका एक आधार-वाक्य सर्वव्यापी और एक अंशव्यापी होता है। न्यायवाक्यों का वर्गीकरण पदों और आधार-वाक्यों के आकस्मिक क्रम पर आधारित नहीं है वरन् उनकी उस रचना पर जोकि हेतु का विलयन सम्भव करता है।

पहले प्रकार के सब न्यायवाक्यों का हेतु इस प्रकार विदित होता है—

ख $\underline{\text{ग}}$ = 0

क $\underline{\text{ख}}$ = 0

∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0

यहाँ पर 'ख' हेतु है और यह एक आधार-वाक्य में निषेधात्मक और दूसरे में स्वीकारात्मक होता है चूँकि तीनों सूत्र शून्य के बराबर हैं इसलिए मध्यपद को निष्कर्ष से निकाला जा सकता है और शेष दो पदों को समेकित रूप में उसी गुण के साथ जोकि आधार-वाक्यों में था, निष्कर्ष बनाया जा सकता है। अर्थात् यदि कोई वर्ग आधार-वाक्य में निषेधात्मक है तो निष्कर्ष में भी निषेधात्मक है और यदि वह आधार-वाक्य में स्वीकारात्मक है तो निष्कर्ष में भी स्वीकारात्मक है।

हम इस नियम को पहले प्रकार के सब न्यायवाक्यों पर दृष्टिपात करके समझ सकते हैं।

पहली आकृति :	बेरबेरे	सिलेरन्ट
	सब हे वि हैं।	कोई हे वि नहीं है।
	सब उ हे हैं।	सब उ हे हैं।
	∴ सब उ वि हैं।	∴ कोई उ वि नहीं है।
	ख $\underline{\text{ग}}$ = 0	ख ग = 0
	क $\underline{\text{ख}}$ = 0	क $\underline{\text{ख}}$ = 0
	∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0	∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0
दूसरी आकृति :	सिनेरे	केमिस्ट्स
	कोई वि हे नहीं है।	सब वि हे हैं।
	सब उ हे हैं।	कोइ उ हे नहीं है।
	∴ कोई उ वि नहीं है।	∴ कोई उ वि नहीं है।
	ग ख = 0	ग $\underline{\text{ख}}$ = 0
	क $\underline{\text{ख}}$ = 0	क ख = 0
	∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0	∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0
चौथी आकृति :	केमिनिज	
	सब वि हे हैं।	
	कोई हे उ नहीं है।	
	∴ कोई उ वि नहीं है।	
	ग $\underline{\text{ख}}$ = 0	
	क ख = 0	
	∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0	

इनमें 'ख' आधार-वाक्य में सामान्य और हेतु है। और उपर्युक्त न्याय-वाक्यों में यह एकबार धनात्मक है और एकबार ऋणात्मक और निष्कर्ष में विलीन हो जाता है। निष्कर्ष में वर्गों का वही गुण होता है जोकि आधार-वाक्यों में होता है।

दूसरे प्रकार के न्याय-वाक्यों का जिनका एक आधार-वाक्य सर्वव्यापी और एक अंशव्यापी होता है, सूत्र निम्न है :

क $\underline{\text{ख}}$ = 0

$$\text{ग}\ \underline{\text{ख}} \neq 0$$
$$\text{ग}\ \underline{\text{क}} \neq 0$$

यहाँ भी समस्या हेतु के परिहार की है। इस दशा में हेतु सदैव दोनों आधार-वाक्यों में और एक ही गुण (धनात्मक या ऋणात्मक) के साथ आता है। निष्कर्ष शेष दोनों वर्गों को संयोजन द्वारा सम्बन्धित करता है। ऐसा इसलिए होता है कि सर्वव्यापी आधार-वाक्य में प्रगट वर्ग के गुण का निषेध किया जाता है और अंशव्यापी प्रतिज्ञप्ति के वर्ग का गुण नहीं बदला जाता है। यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य है कि यदि वर्ग पहले से ही निषेधात्मक है तो उसके पहले एक अतिरिक्त निषेध को जोड़ने से वर्ग धनात्मक हो जायगा। यदि 'क' निषेधात्मक वर्ग है तो '$\sim\underline{\text{क}}$' वास्तव में 'क' के बराबर है।

हम देखें कि उपर्युक्त सूत्र किस प्रकार उन न्याय-वाक्यों पर लागू होता है जिनके आधार-वाक्यों में एक सर्वव्यापी और दूसरा अंशव्यापी होता है। हम विभिन्न आकृतियों के संयोगों पर ध्यान दें।

पहली आकृति :	डेरिआइ	फिराइओ
	सब हे वि हैं	कोई हे वि नहीं है।
	कुछ उ हे हैं।	कुछ उ हे हैं।
	∴ कुछ उ वि हैं।	∴ कुछ उ वि नहीं हैं।
	$\text{ख}\ \underline{\text{क}} = 0$	$\text{ख}\ \text{क} = 0$
	$\text{ग}\ \text{ख} \neq 0$	$\text{ग}\ \text{ख} \neq 0$
	$\therefore \text{ग} \sim (\underline{\text{क}}) \neq 0$	$\therefore \text{ग}\ \underline{\text{क}} \neq 0$
	अर्थात् $\text{ग}\ \text{क} \neq 0$	
दूसरी आकृति :	फिस्टाइनो	बेरोको
	कोई वि हे नहीं है।	सब वि हे हैं।
	कुछ उ हे हैं।	कुछ उ हे नहीं हैं।
	∴ कुछ उ वि नहीं हैं।	∴ कुछ उ वि नहीं हैं।
	$\text{क}\ \text{ख} = 0$	$\text{क}\ \underline{\text{ख}} = 0$
	$\text{ग}\ \text{ख} \neq 0$	$\text{ग}\ \underline{\text{ख}} \neq 0$
	$\therefore \text{ग}\ \underline{\text{क}} \neq 0$	$\therefore \text{ग}\ \underline{\text{क}} \neq 0$
तीसरी आकृति :	डाइसेमाइस	डेटाइसाइ
	कुछ हे वि है।	सब हे वि हैं।

सब हे उ हैं।	कुछ हे उ हैं।
∴ कुछ उ वि हैं।	∴ कुछ उ वि हैं।
ख क $\neq 0$	ख $\underline{\text{क}} = 0$
ख $\underline{\text{ग}} = 0$	ख ग $\neq 0$
∴ $\sim$($\underline{\text{ग}}$) क $\neq 0$	∴ ग $\sim$($\underline{\text{क}}$) $\neq 0$
अर्थात् ग क $\neq 0$	अर्थात् ग क $\neq 0$

तीसरी आकृति :

बोकेर्डो	फिराइसोन्
कुछ हे वि नहीं हैं।	कोई हे वि नहीं है।
सब हे उ हैं।	कुछ हे उ है।
∴ कुछ उ वि नहीं हैं।	∴ कुछ उ वि नहीं हैं।
ख $\underline{\text{क}} \neq 0$	ख क $= 0$
ख $\underline{\text{ग}} = 0$	ख ग $\neq$
∴ $\underline{\text{क}} \sim$($\underline{\text{ग}}$) $\neq 0$	∴ ग $\underline{\text{क}} \neq 0$
अर्थात् $\underline{\text{क}}$ ग $\neq 0$	

चौथी आकृति :

डाइमेराइस	फिसाइसोन्
कुछ वि हे हैं।	कोई वि हे नहीं है।
सब हे उ हैं।	कुछ हे उ हैं।
∴ कुछ उ वि हैं।	∴ कुछ उ वि नहीं हैं।
क ख $\neq 0$	क ख $= 0$
ख $\underline{\text{ग}} = 0$	ख ग $\neq 0$
∴ क $\sim$($\underline{\text{ग}}$) $\neq 0$	∴ ग $\underline{\text{क}} \neq 0$
अर्थात् क ग $\neq 0$	

निम्नलिखित उदाहरण द्वारा डाइमेराइस सूत्र की सार्थकता प्रदर्शित की जा सकती है :

कुछ भारतीय देशद्रोही हैं।	ग = भारतीय
सब देशद्रोही अपराधी हैं।	ख = देशद्रोही
∴ कुछ भारतीय अपराधी हैं।	क = अपराधी
ग ख $\neq 0$	उन भारतीयों का वर्ग जोकि देशद्रोही है शून्य नहीं है।
ख $\underline{\text{क}} = 0$	उन देशद्रोहियों का वर्ग जोकि अपराधी नहीं है शून्य है।

∴ ग$\sim$(क़)$\neq 0$	उन भारतीयों का वर्ग जोकि अपराधी नहीं हैं शून्य नहीं है।
अर्थात् ग क$\neq 0$	उन भारतीयों का वर्ग जोकि अपराधी हैं शून्य नहीं है।

सारांश यह है कि आधार-वाक्यों और पदों के क्रम की स्थिति का कोई महत्त्व नहीं है। उनके आधार पर परम्परागत तर्कशास्त्र में न्याय-वाक्यों का आकृतियों एवं संयोगों में वर्गीकरण विशुद्ध तार्किक दृष्टिकोण से दोषपूर्ण है। वस्तुतः न्याय-वाक्य दो ही प्रकार के होने हैं जिनके सूत्र क्रमशः हैं :

ख ग $= 0$, क ख $= 0$ अतः क ग़ $= 0$ एवं क ख $= 0$, ग ख $\neq 0$ अतः ग क़ $\neq 0$

6·8 वर्गों के न्याय के प्रमेय

1. विश्ववर्ग तथा शून्यवर्ग के नियम
   - (i) $1 = \sim 0$
   - (ii) $0 =$ क $\times$ क़
   - (iii) $1 =$ क $+$ क़
   - (iv) क $\times 0 = 0$
   - (v) क $\times 1 =$ क
   - (vi) क $+ 0 = 1$
   - (vii) क $+ 1 = 1$
   - (viii) (क $= 1$) $\equiv$ (क़ $= 0$)
   - (ix) (क $\neq 1$) $\equiv$ (क़ $\neq 0$)
2. साहचर्य के नियम
   - (i) क $\times$ (ख $\times$ ग) $=$ (क $\times$ ख) $\times$ ग
   - (ii) क $+$ (ख $+$ ग) $=$ (क $+$ ख) $+$ ग
3. स्थानान्तरण के नियम
   - (i) क ख $=$ ख क
   - (ii) क $+$ ख $=$ ख $+$ क
   - (iii) (क $=$ ख) $\equiv$ (ख $=$ क)
   - (iv) (क $\neq$ ख) $\equiv$ (ख $\neq$ क)
4. वितरण के नियम
   - (i) क $\times$ (ख $+$ ग) $=$ (क $\times$ ख) $+$ (क $\times$ ग)
   - (ii) क $+$ (ख $\times$ ग) $=$ (क $+$ ख) $\times$ (क $+$ ग)

5. द्विनिषेध का नियम

$$\text{क} = \underline{\underline{\text{क}}}$$

6. डि मार्गन के नियम

(i) $\sim(\text{क} \times \text{ख}) = \underline{\text{क}} + \underline{\text{ख}}$

(ii) $\sim(\text{क} + \text{ख}) = \underline{\text{क}} \times \underline{\text{ख}}$

6·9 प्रातीक-विस्तारण परीक्षण

वर्गों के न्याय में कुछ अनुमानों की परीक्षा करने की वेन-आकृति विधि है। यह विधि उन्हीं युक्तियों पर लागू हो सकती है जिनमें तीन या अधिक से अधिक चार वर्ग हों। प्रातीक-विस्तारण परीक्षण एक ऐसी विधि है जो कितने भी वर्गों वाली युक्तियों की परीक्षा कर सकती है।

मानलीजिए किसी युक्ति का सामान्य रूप इस प्रकार है :

सभी क ख हैं, और सभी ख ग हैं। अतः सभी क ग हैं।।

$$(\text{क}\,\underline{\text{ख}} = 0 \cdot \text{ख}\,\underline{\text{ग}} = 0) = \text{क}\,\underline{\text{ग}} = 0$$

इस युक्ति में तीन वर्ग प्रयुक्त हुए हैं इनमें से एक प्रत्येक आधार प्रतिज्ञप्ति व निष्कर्ष में लुप्त है। क्योंकि हम जानते कि किसी वैध-युक्ति का निष्कर्ष उसकी आधार प्रतिज्ञप्तियों से आपादित है, इसलिए यदि हम प्रत्येक प्रतिज्ञप्ति में लुप्त पद को शामिल करके विस्तारण कर सकते तो हम आधार प्रतिज्ञप्तियों का निष्कर्ष से मिलान आसानी से कर सकते और इस प्रकार तय कर पाते कि क्या एक दूसरे के लिए पर्याप्त है।

हमें यह भी मालूम है कि वर्गों के न्याय का नियम है कि

$$\text{क} = \text{क}\ (\text{ख})$$

इस नियम के अनुसार कोई भी वर्ग 'क' का तथा उस वर्ग और सर्वव्यापी वर्ग के गुणनफल का विस्तार सर्वसम है। चूंकि 'क $\underline{\text{ख}}$' का सर्वव्यापी वर्ग से गुणनफल 'क ख' के बराबर है, इसलिए उपर्युक्त युक्ति में पहली प्रतिज्ञप्ति 'क ख = 0' को बगैर उसका अर्थ बदले, निम्नप्रकार से लिख सकते हैं :

$$\text{क}\,\underline{\text{ख}}\ (\text{स}) = 0$$

सर्वव्यापी वर्ग की यह विशेषता है कि वह किसी वर्ग 'क' और उसके पूरक '$\underline{\text{क}}$' का योग है (अर्थात् $\text{स} = \text{क} + \underline{\text{क}}$) चूंकि हम पहली प्रतिज्ञप्ति में वर्ग 'ग' का समावेश करना चाहते हैं और चूंकि '$\text{ग} + \underline{\text{ग}}$' = स है इसलिए पहली प्रतिज्ञप्ति को दुबारा इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$\text{क}\,\underline{\text{ख}}\ (\text{ग} + \underline{\text{ग}}) = 0$$

वितरण के नियम को लागू करके हम इसी प्रतिज्ञप्ति का निम्न विस्तारित रूप प्राप्त कर सकते हैं :

$$\text{क}\ \underline{\text{ख}}\ \text{ग} + \text{क}\ \underline{\text{ख}}\ \underline{\text{ग}} = 0$$

विस्तारित प्रतिज्ञप्ति मूल प्रतिज्ञप्ति '$\text{क}\ \underline{\text{ख}} = 0$' के हूबहू समान है, अन्तर केवल इतना है कि वर्ग 'ग' जोड़ दिया गया है।

अभी भी हम तय नहीं कर सकते कि क्या युक्ति वैध है। इसके लिये हमें दूसरी प्रतिज्ञप्ति और निष्कर्ष का विस्तारण पहली प्रतिज्ञप्ति के समान करना होगा। लुप्त पद का समावेश करने पर दूसरी प्रतिज्ञप्ति का रूप इस प्रकार प्राप्त होगा :

1. $\text{ख}\ \underline{\text{ग}} = 0$ (दूसरी आधार प्रतिज्ञप्ति)
2. $\text{ख}\ \underline{\text{ग}}\ (\text{स}) = 0$
3. $\text{ख}\ \underline{\text{ग}}\ (\text{क} + \underline{\text{क}}) = 0$
4. $\text{ख}\ \underline{\text{ग}}\ \text{क} + \text{ख}\ \underline{\text{ग}}\ \underline{\text{क}} = 0$
5. $\text{क}\ \text{ख}\ \underline{\text{ग}} + \underline{\text{क}}\ \text{ख}\ \underline{\text{ग}} = 0$

इसी प्रकार निष्कर्ष का विस्तारण निम्नलिखित क्रम में होगा :

1. $\text{क}\ \underline{\text{ग}} = 0$ निष्कर्ष
2. $\text{क}\ \text{ग}\ (\text{स}) = 0$ (क्योंकि $\text{क} = \text{क}\ (\text{स})$)
3. $\text{क}\ \underline{\text{ग}}\ (\text{ख} + \underline{\text{ख}}) = 0$ (क्योंकि $\text{स} = \text{ख} + \underline{\text{ख}}$)
4. $\text{क}\ \underline{\text{ग}}\ \text{ख} + \text{क}\ \underline{\text{ग}}\ \underline{\text{ख}} =$ (वितरण के नियम से)
5. $\text{क}\ \underline{\text{ख}}\ \underline{\text{ग}} + \text{क}\ \text{ख}\ \underline{\text{ग}} = 0$ (प्रतिवर्तन के नियम से)

अब हम युक्ति को पूर्णतया विस्तारित रूप में इस तरह लिख सकते हैं—

$$[(\text{क}\ \underline{\text{ख}}\ \text{ग} + \text{क}\ \underline{\text{ख}}\ \underline{\text{ग}} = 0) \cdot (\text{क}\ \text{ख}\ \underline{\text{ग}} + \underline{\text{क}}\ \text{ख}\ \underline{\text{ग}} = 0)] \supset (\text{क}\ \text{ख}\ \underline{\text{ग}} + \text{क}\ \underline{\text{ख}}\ \underline{\text{ग}} = 0)$$

यदि विस्तारित रूप में निष्कर्ष के सभी वर्ग शून्य हैं तो युक्ति वैध होगी। उपर्युक्त युक्ति वैध है क्योंकि निष्कर्ष के वर्ग '$\text{क}\ \text{ख}\ \underline{\text{ग}}$' को पहली प्रतिज्ञप्ति रिक्त कर देती है और निष्कर्ष के वर्ग '$\text{क}\ \underline{\text{ख}}\ \underline{\text{ग}}$' को दूसरी प्रतिज्ञप्ति। और इस प्रकार निष्कर्ष के सम्पूर्ण वर्गों को रिक्त करके उसे शून्य वर्ग के सम कर देती है। रिक्त करने की प्रक्रिया को रेखा खींच कर बताना सुविधाजनक है।

यह आवश्यक नहीं है कि मूल प्रतिज्ञप्ति विस्तारित करने में जितने रूपान्तर होते हैं सभी लिखे जायें। इतना पर्याप्त है कि किन्हीं वर्गों 'क ख' के गुणनफल का किसी दूसरे वर्ग 'ग' को जोड़कर विस्तारण किया जाये।

निम्नलिखित युक्ति

$$(\text{क}\,\underline{\text{ख}} = 0 \cdot \text{ग}\,\text{क} = 0) \supset \text{ग}\,\text{ख} = 0$$

का विस्तारण करने पर युक्ति अवैध सिद्ध होती है :

$$[(\text{क}\,\underline{\text{ख}}\,\text{ग} + \text{क}\,\underline{\text{ख}}\,\underline{\text{ग}} = 0) \cdot (\text{क}\,\text{ख}\,\text{ग} + \text{क}\,\underline{\text{ख}}\,\text{ग} = 0)] \supset (\text{क}\,\text{ख}\,\text{ग} +$$
$$\uparrow \underline{\text{क}}\,\text{ख}\,\text{ग} = 0)]$$

6·91 लघुत्तरप्रातीक-विस्तारण परीक्षण

तीन से अधिक पद वाली युक्तियों के लिए प्रातीक-विस्तारण परीक्षण असुविधाजनक सिद्ध होती है और लघुत्तरप्रातीक-विस्तारण परीक्षण सरल पड़ता है। इस परीक्षण को समझने के लिए वर्गों के न्याय के निम्नलिखित तीन नियमों पर ध्यान देना होगा :

(i) $\text{क} = 0 \supset \text{क}\,\text{ख} = 0$

(ii) $\text{क}\,\text{ख} \neq 0 \supset \text{क} \neq 0$

(iii) $\epsilon\,\text{क}\,\text{ख} \supset \epsilon\,\text{क}$ ।

पहले नियम के अनुसार यदि वर्ग 'क' शून्य है तो उस वर्ग का कोई भाग 'क ख' (या 'क ख ग' या 'क ख ग घ') भी शून्य है। दूसरे तथा तीसरे नियमों के अनुसार यदि किसी वर्ग 'क ख' के सदस्य हैं तो कोई भी वर्ग जिसमें 'क ख' शामिल है उसमें (यथा वर्ग 'क' या 'ख') उसी मात्रा में सदस्य हैं।

पहले नियम पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि किसी विशुद्ध सर्वव्यापी अनुमान की परीक्षा केवल निष्कर्ष का विस्तारण करके हो सकती है। निम्नलिखित युक्ति

'सभी क ख हैं और सभी ख ग हैं। अतः सभी क ग हैं।'

के निष्कर्ष को इस प्रकार विस्तारित कर सकते हैं :

$$(\text{क}\,\underline{\text{ख}} = 0 \cdot \text{ख}\,\underline{\text{ग}} = 0) \supset [illegible] = 0$$

चूंकि हमें मालूम है कि निष्कर्ष का 'क ख ग' 'ख ग' का अंश है जोकि दूसरी प्रतिज्ञप्ति के अनुसार शून्य है, और निष्कर्ष का 'क ख ग' 'क ख' का अंश है जोकि पहली प्रतिज्ञप्ति के अनुसार शून्य है और हमें यह भी मालूम है कि किसी शून्य वर्ग का अंश भी शून्य है, इसलिए हम निष्कर्ष के इन दोनों अंशों को काटते हैं और युक्ति को वैध मानते हैं :

लघुत्तरप्रातीक-विस्तारण परीक्षण युक्तियों की अवैधता का भी इसकी वैधता के समान ही पता लगा सकता है। युक्ति लीजिए :

'सभी क ख हैं' और 'सभी ग ख हैं'। अतः 'सभी ग क हैं'।।

$$(\text{क ख} = 0 \cdot \text{ग } \underline{\text{ख}} = 0) \supset \text{ग } \underline{\text{क}} = 0$$

निष्कर्ष का विस्तारण करने पर हम पाते हैं :

$$(\text{क } \underline{\text{ख}} = 0 \cdot \text{ग } \underline{\text{ख}} = 0) \supset (\underline{\text{क}} \text{ ख ग} = 0)$$

निष्कर्ष से '$\underline{\text{क}}$ $\underline{\text{ख}}$ ग' को हम काट सकते हैं क्योंकि दूसरी प्रतिज्ञप्ति के अनुसार '$\underline{\text{ख}}$ ग' शून्य है और '$\underline{\text{क}}$ $\underline{\text{ख}}$ ग' उसका अंश है। परन्तु प्रतिज्ञप्तियों में कहीं भी '$\underline{\text{क}}$ ख ग' शून्य नहीं पाया जाता और इसलिए निष्कर्ष में इसका पाया जाना युक्ति की अवैधता बताता है।

अभ्यास

(क) निम्नलिखित वाक्यों का रूपान्तर वर्ग की प्रतीकावली का प्रयोग करके कीजिए :

1. जो वस्तुएँ या तो गाय हैं या गाय और काली दोनों हैं बराबर है उन वस्तुओं के जो गाय हैं।
2. जो वस्तुएं दोनों या सेब या लाल और नाश्पाती और नहीं-लाल हैं वह सममित हैं उन वस्तुओं से जो या सेब और नाश्पाती या सेब और नहीं-लाल या नाश्पाती और लाल हैं।
3. यदि कोई वर्ग किसी दूसरे वर्ग के निषेध से सर्वसम है तो दूसरा पहले के निषेध से सर्वसम है।
4. यदि कोई जीवित नाग-कन्याएँ नहीं हैं और न कोई अजीवित, तो नाग-कन्याएँ कभी भी नहीं थीं।
5. यदि सिक्ख या तो सरदार या परिहास के विषय हैं, तो सिक्ख उन वस्तुओं में सम्मिलित हैं जो या सरदार या परिहास के विषय हैं।
6. यदि भूत-प्रेत नहीं हैं, तो कोई दुष्ट भूत—प्रेत नहीं हैं।
7. यह कहना कि सभी आम फल हैं बराबर है कहने के कि वह वस्तुएँ जोकि आम हैं या फल नहीं उनका वर्ग शून्य है।
8. यदि एक वर्ग दूसरे के समान है, और तीसरा चौथे के समान है तो जो वस्तुएँ पहले या तीसरे वर्ग में हैं वही दूसरे और चौथे वर्ग में हैं।
9. उन मनुष्यों का वर्ग जोकि मूर्ख या पागल हैं उस वर्ग के सर्वसम हैं जो न मूर्ख हैं न पागल हैं।

10. यह कहना कि एक वर्ग का निषेध दूसरे में सम्मिलित है बराबर है यह कहने के कि सभी वस्तुएं या तो पहले या दूसरे वर्ग में हैं।
11. यदि कोई चौकोर-वृत्त नहीं है, तो कोई वृताकार चौकोर नहीं है।
12. पेड़ों का वर्ग बराबर है उन वस्तुओं के वर्ग से जो या तो पेड़ और हरे है या पेड़ और नहीं हरे हैं।

(ख) मान लीजिए

स = सब व्यक्तियों का कुलक

का = सब कायस्थों का कुलक

चा = सब चाय पीने वालों का कुलक

ब्रा = सब ब्राह्मणों का कुलक

खू = सब खूनियों का कुलक

दा = सब दार्शनिकों का कुलक

श = सब शराब पीने वालों का कुलक

भा = सब भाँग पीने वालों का कुलक

निम्नलिखित व्यक्तियों के वर्गो को प्रतीकीकृत कीजिये :

1. कुछ शराब पीने वाले कायस्थ दार्शनिक हैं।
2. कोई ब्राह्मण कायस्थ नहीं हैं;
3. जो व्यक्ति शराब और चाय पीते हैं वह भाँग भी पीते हैं;
4. सभी ब्राह्मण शराब, चाय और भाँग पीते हैं;
5. कुछ खूनी कायस्थ चाय और भाँग पीते हैं पर शराब नहीं;
6. कुछ खूनी ब्राह्मण जो शराब पीते हैं चाय या शराब नहीं पीते;
7. दार्शनिक न चाय न भाँग पीता है;
8. कुछ ब्राह्मण दार्शनिक हैं या खूनी;
9. सभी चाय पीने वाले या तो शराब या भाँग पीते हैं।

(ग) यदि क = दम्भी मनुष्य, ख = वृद्ध मनुष्य, ग = मूर्खगण, तो निम्नलिखित व्यक्तियों के वर्गों को शब्दों में व्यक्त कीजिए :

1. क × ख × ग	4. ग × $\underline{\text{ग}}$	7. ~($\underline{\text{क}}$ × $\underline{\text{ख}}$ × $\underline{\text{ग}}$)
2. क + ख + ग	5. ख × 1	8. 1 + 0
3. ~(क + ग)	6. (ख + $\underline{\text{ग}}$) × 0	9. (ख × ग) + 1

तथा, निम्नलिखित व्यक्तियों के वर्गों को प्रतीकीकृत कीजिये :

1. जो न तो दम्भी न वृद्ध हैं;
2. जो या दम्भी या युवा हैं और जो या दम्भी या मूर्ख हैं;
3. दम्भी वृद्ध बुद्धिमान मनुष्य;
4. युवा मूर्ख जिन्होंने अभी दम्भ करना नहीं सीखा है;
5. वह जो दम्भी और वृद्ध हैं या मूर्ख और दम्भहीन हैं।

(घ) निम्नलिखित प्रमेयों को विरोध चतुरस्र पर लागू करके दिखाइये ;

1. यदि $\text{क} \times \underline{\text{ख}} = 0$, तो $\text{क} \times \text{ख} = 0$ असत्य है;
2. यदि $\text{क} \times \text{ख} = 0$ तो यह असत्य है कि $\text{क} \times \text{ख} \neq 0$;
3. यदि $\text{क} \times \text{ख} \neq 0$ असत्य है, और $\text{क} \times \text{ख} \neq 0$ असत्य है तो $\text{क} = 0$;
4. यदि यह असत्य है कि यदि $\text{क} \times \underline{\text{ख}} = 0$ तो $\text{क} \times \underline{\text{ख}} \neq 0$;
5. यदि $\text{क} \times \text{ख} = 0$, तो $\text{क} \times \text{ख} \neq 0$ सत्य है, परन्तु $\text{क} \times \underline{\text{ख}} \neq 0$ और $\text{क} \times \text{ख} = 0$ असत्य है।

(ङ) निम्नलिखित प्रमेयों को अपरोक्ष अनुमान की तालिका पर लागू करके दिखाइये :

1. यदि $\text{क} \times \text{ख} = 0$, तो $\text{क} \times \sim(\underline{\text{ख}}) = 0$;
2. यदि $\text{क} \times \text{ख} \neq 0$, तो $\text{क} \times \sim(\underline{\text{ख}}) \neq 0$;
3. यदि $\text{क} \times \text{ख} = 0$, तो $\text{ख} \times \text{क} = 0$;
4. यदि $\text{क} \times \underline{\text{ख}} = 0$, तो $\underline{\text{ख}} \times \sim(\underline{\text{क}}) \neq 0$।

(च) निम्न को वेन आकृति द्वारा व्यक्त कीजिये :

$\text{क} \subseteq \text{ग}$; तथा $\text{ख} \cap \underline{\text{ग}} \neq 0$

(छ) निम्नलिखित युक्तियों की वैधता वेन आकृतियों द्वारा परीक्षण कीजिये। आकृतियों के क्षेत्रों द्वारा बताइये कि युक्ति वैध या अवैध क्यों है।

1. सभी गवाह प्रतिकूल हैं।
   कुछ गवाव झूठे नहीं हैं।
   अतः कुछ झूठ बोलने वाले प्रतिकूल नहीं हैं।
2. सभी गवाह प्रतिकूल हैं।
   कुछ झूठ बोलने वाले प्रतिकूल नहीं है।
   अतः कुछ झूठ बोलने वाले गवाह नहीं हैं।

3. सभी झूठ बोलने वाले प्रतिकूल हैं।
   कुछ गवाह झूठ बोलने वाले नहीं हैं।
   अतः कुछ गवाह प्रतिकूल नहीं हैं।

4. $\text{क} \cap \text{ख} \subseteq \underline{\text{ग}}$

   $\text{क} \cup \text{ग} \subseteq \text{ख}$

   $\text{क} \cap \text{ग} = 0$

5. $\underline{\text{क}} \subseteq \sim(\text{ख} \cap \text{ग})$

   $\text{ग} \subseteq \underline{\text{क}}$

   $\text{ख} \subseteq \text{क} \cup \underline{\text{ग}}$

   $\therefore \sim(\text{ख} \cup \text{ग}) \subseteq \underline{\text{क}}$

सहायक ग्रन्थों की सूची

1. Ambrose, A. & Lazerowitz, M.
   Fundamentals of Symbolic Logic, New York, Rinehart, 1954.
2. Basson, A. H. & O'Connor, D. J.
   Introduction to Symbolic Logic, London, 1957.
3. Chapman, F. M. & Henle, P.
   The Fundamentals of Logic, London, Scribners, 1933.
4. Cohen, M. & Nagel, E.
   Introduction to Logic & Scientific Method, London, Routledge & Kegan Paul, 1957.
5. Copi, I.
   Symbolic Logic, New York, Macmillan, 1959.
6. Halberstadt, W. H.
   Introduction to Modern Logic, New York, Harper, 1910.
7. Michelos, Alex. C.
   Principles of Logic, Englewood Cliffs, N., Prentice-Hall, 1969.
8. Riechenbach, H.
   Elements of Symbolic Logic, New York, Macmillan, 1947.
9. Schipper, E. W. & Schuh, E.
   A First Course in Modern Logic, New York, Holt, 1959.
10. Suppes, Patrick,
    Introduction to Logic, New York, Van Vostrand, 1957.

पारिभाषिक शब्दावली : अंग्रेजी-हिन्दी

A

Absorption	अवशोषण
Addition	योग, संकलन
Alternate	विकल्प
Alternation	विकल्पन
Alternative	वैकल्पिक
Antecedent	हेतु, पूर्ववर्ती
Arbitrary	स्वेच्छाचारी, मनचाहा
Argument	युक्ति
Association	साहचर्य्य
Assumption	मान्यता
Axiom	अभिग्रहीत

C

Class	वर्ग
—Null, Empty	शून्य
—Universal	सार्विक
Calculus	कलन
Combination	संहृति
Commutation	क्रमविनिमयन
Conclusion	निष्कर्ष
Confirmation	संपुष्टि
Conjunct	संयोज्य
Conjunction	संयोजन
Conjunctive	संयोजी, संयोजनात्मक
Connective	सम्बन्धात्मक
Connector	योजी, सम्बन्धक

Connexity	पूर्वापर संयुक्तता
Connotation	गुणार्थ
Connotative	गुणार्थक
Converse	परिवर्त, प्रतिलोम
Conversion	परिवर्तन
Corresponding	अनुरूप
Consequent	फल
Consistent	संगत
Consolidated	समेकित
Constant	अचर
	आधिपत्य
Contradiction	व्याघात, विरोध
Contradictory	विरोधी
Contraposition	प्रतिपरिवर्तन
Contrary	विपरीत
—Sub-Contrary	उपविपरीत

E

Elimination	परिहार
Equivalence	समानता
Excluded Middle	मध्यमभाव
Exhaustive	सर्वसमावेशी
Existential	अस्तित्वपरक
Expression	अभिव्यक्ति, अभिव्यंजक, व्यंजक
Extension	विस्तार
Extrapolation	बहिर्वेशन

F

Factor	घटक
Fallacy	(तर्क) दोष
Figure	आकृति
Formal	आकारी
Formula	सूत्र

—Well-formed	सुगठित
—Contradiction	व्याघात,-तर्कअसिद्ध
—Tantology	पुनरुक्ति, तर्कसिद्ध
—Contingent	आपातिक
Forms	प्ररूप
Function	फलन
—Propositional	प्रतिज्ञप्तीय

G

Generalization	सामान्यीकरण
—Universal	सर्वव्यापी
—Existential	अस्तित्वपरक

H

Hypothesis	अभ्युपगम
Hypothetical	हेत्वाश्रित

I

Identity	सर्वसमता
Inclusion	समावेशन
Inconsistency	असंगति
Indicator	निर्देशक
Indirect	परोक्ष
Inference	अनुमान, अनुमिति
—Immediate	अनन्तरानुमान
—Mediate	सान्तरानुमान, परोक्षानुमान
Interpretation	अर्थनिर्णय, विवर्चन
Implicans	आपादक
Implicate	आपाद्य
Implication	आपादन
—Counter	प्रत्यापादन
—Material	वस्तुगत
—Merging of	का संविलय
—Sub-implication	उपआपादन

—Super-implication	अध्यापादन
Import	आशय
Instantiation	दृष्टान्तीकरण
—Existential	अस्तित्वपरक
—Universal	सर्वव्यापी

J

Justification	औचित्य प्रतिपादन

L

Language	भाषा
—Cognitive	संज्ञानात्मक
—Emotive	संवेगात्मक
Linguistic	भाषाई
Logical	तार्किक
Logically	तर्कत:
Logically propername	तर्कत: व्यक्तिवाचक नाम

M

Matrix	मैट्रिक्स
Metalanguage	अधिभाषा
Modal	निश्चयामात्रक
Modus Ponecns	विधायक हेतुफलानुमान
Modus-Tollens	निषेधक हेतुफलानुमान
Mood	संयोग, विन्यास

N

Negation	निषेध
—Double	दोहरा निषेध
Negation Line, Breaking of	निषेध रेखा का भंग करना
Necessary	अनिवार्य
Necessarily	अनिवार्यत:
Necessitation	अवश्यभावन
Normal Form	सामान्य प्ररूप

O

Operator	संकारक

Obverse	प्रतिवर्तित
Obversion	प्रतिवर्तन
or	या

P

Paradox	विरोधाभास
Parenthesis	कोष्ठक
Predicable	विधेय धर्म
Predicate	विधेय
Premiss	आधार वाक्य
Primitive	पूर्वंग
Proposition	प्रतिज्ञप्ति
—Affirmative	स्वीकारात्मक, विधायक
—Altern	आश्रय
—Analytic	विश्लेषी
—Atomic	परमाणविक
—Compound	मिश्र
—Conditional	सोपाधिक
—Conjunctive	संयोजी, संयोजनात्मक
—Disjunctive	वियोजी, वियोजनात्मक
—Equivalent	समान
—Implicative	आपादनात्मक
—Molecular	आणविक
—Particular	अंशव्यापी
—Simple	सरल
—Singular	एकव्यापी
—Subaltern	उपाश्रय
—Synthetic	संश्लेषी
—Universal	सर्वव्यापी
Postulate	अभिगृहीत
Power	घात
Proof	प्रमाण

—Conditional	सोपाधिक
—Formal	श्राकारी
—Indirect	परोक्ष
—Reductio ad absurdum	वाधितार्थ

Q

Quantification	परिमाणीकरण
Quantifier	परिमाणक
—Existential	ग्रस्तित्वात्मक
—Universal	सार्विक

R

Range	श्रभिसीमा
Redundant	त्याज्य, व्यर्थ
Redundance	श्राधिक्य
Relation	सम्वन्ध
—Asymmetrical	असममिति
—Atransitive	ग्रसंचारी
—Dyadic	द्विकीय, द्विपदी
—Intransitive	ग्रसंचारी
—Irreflexive	ग्रनस्ववाचक
—Monadic	एकपदी
—Non-symmetrical	न सममिति
—Non-reflexive	न स्वदर्शी
—Many-Many	वहु-वहु
—Many-One	वहु-एक
—Non-transitive	न संचारी
—One-Many	एक-वहु
—One-One	एक-एक
—Reflexive	स्ववाचक
—Symmetrical	सममिति
—Triadic	त्रिकीय, त्रिपदी
Rule	नियम

S

Satisfiable	संतुष्टीय
Satisfiability	संतुष्टीयता
Sentence	वाक्य
—Indicative	निश्चयार्थक
—Interrogative	प्रश्नार्थक
—Imperative	आज्ञार्थक
—Exclamatory	उत्क्रोषात्मक
—Optative	इच्छा बोधक
Set	कुलक
Simplification	सरलीकरण
Sound	ठोस
Square of opposition	विरोध चतुरस्र
State of affairs	वस्तुस्थिति
Stroke	तिर्यक रेखा
Sub-altern	उपाश्रय
Subject	उद्देश्य
Subscript	पादांक, पादाक्षर
Substitution	प्रतिस्थापन
Syllogism	न्याय वाक्य
Symbol	प्रतीक
—Indexical	सूचकीय
—Iconic	प्रतिमापक
—Conventional	रूढ़, अभिसामयिक
—Mention of	उल्लेख
—Use of	प्रयोग
Symbolic	प्रतीकात्मक
—Expansion	विस्तारण
Syntactics	विन्यासक
System	तंत्र

T

Theorem	प्रमेय
—Meta-	अधि-
Token	चिह्न
Transposition	पक्षान्तरण, अन्तर्विनिमय
Truth-table	सत्यता तालिका
Type	प्ररूप

U

Universe of discourse	वाद विश्व

V

Validity	वैधता
Variable	चर, परिवर्त
—Bound	बद्ध
—Free	मुक्त
—Individual	व्यक्तीय, व्यष्टिपरक
—Propositional	प्रतिज्ञप्तीय
Venn diagram	वेन आरेक

—o—

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
1	8	'प्रतिभापरक	'प्रतिमापरक
3	17	प्रयोग का उल्लेख	प्रयोग तथा उल्लेख
3	9	घो	घेर
5	12	कथन प्रतिज्ञप्ति	कथन या प्रतिज्ञप्ति
5	16	उपयुक्त	उपर्युक्त
6	16	व्यक्ति	व्यक्त
6	22	'आपदन'	'आपादन'
10	21	चैन की	चैन खींचने की
12	7	वस्तुस्थित	वस्तुस्थिति
14	10	'प'	'∼प'
14	23	(या'	('या'
15	2	पत्नी	फन्नी
15	3	पत्नी	फन्नी
17	3	प्रतिज्ञप्ति असत्य का	प्रतिज्ञप्ति का
17	17	'∼∼प प'	'∼∼प≡प'
19	13	कितार्किक	कि हम एक तार्किक
20	19	निषेध तथा वियोजन	निषेध तथा संयोजन
23	14	एक-दूसरे	दूसरे
23	15	प=फ	प≡फ
24	1	वही	नहीं
25	1	व्यासवर्तक	व्यावर्तक
26	20	(फ फ)	(फ/फ)
26	26	'प/प'≡'प'	'प/प'≡'∼प'
30	26	प्रतिज्ञप्ति	प्रतिज्ञप्तीय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
30	29	v 'भ'	v 'भ]'
31	6	(भप)]	(भ ⊃ प)]
32	23	वियोजक	वियोजन
33	15	प्रतिवर्तन	पक्षान्तरण
34	29	'ए-ई'	'ए · ई'
35	3	O आई v ओ	आई v ओ
35	8	नीचे	बीच में
35	20	परोक्षानुमान	अपरोक्षानुमान
35	27	परोक्षानुमान	अपरोक्षानुमान
36	18	फल	फलन
41	21	जन	जिन
42	6	(1)	1
42	8	0000,11110000 11110000	0000,11110000
43	3	का विधि	विधि का
45	10	साथी	साक्षी
45	17	साथी	साक्षी
48	4	में है	में सिद्ध है
48	19	भाषा में	भाषा
50	1	'प फ'	'प ⊃ फ'
52	5	111	1110
52	11	1000	1001
53	9	1000	1001
53	11	1000	1001
54	14	कि मूल्यों	किन मूल्यों
54	27	संयोजक	संयोजन
56	27	' . ' को मानने	'⊃' को 0 मानने
56	29	'व भ'	'व ⊃ भ'
57	1	'व भ'	'व ⊃ भ'
58	5	परोक्ष	परीक्षा परोक्ष

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
58	21	संयोजक	संयोजन
60	1	नियोजन	वियोजन
62	10	'पा-फा'	'पा · फा'
62	19	उपभोग	उपयोग
65	17	उल्लघंन जो	उल्लघंन तो
67	8	ऋकारी	आकारी
67	24	बनाता	बताता
70	31	हूँ कहने में	हूं में
71	14	अतियतिवाद	अनियतिवाद
71	18	कहते	कह के
72	13	उठता	ऊबता
73	7	चुकाना अमान्य है ॥	चुकाना है, अमान्य है ॥
73	18	पाद	पद
[illegible]	9	ध	घ
[illegible]	24	संज्ञा जिस	संज्ञा से जिस
3	1	सम्भवत:	स्वभावत:
84	7	ऊपर	के ऊपर
85	1	अप्सराएं शापग्रस्त	अप्सराएं · शापग्रस्त
86	11	से	में
86	12	अस्तित्वमापक	अस्तित्वपरक
91	21	और	और न
96	2	विलोम	विलोप
105	22	सम्मानित	सम्भावित
108	13	वियोजक	वियोजन
108	15	वियोजक	वियोजन
108	23	व्यास	व्याप्त
115	21	असल	असत्य
115	26	'य न र को	'य ने र को
115	27	वे यरल	वें यरल
120	19	कि नहीं	ठीक नहीं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
121	22	खिलाड़ी	खिलाड़ी को
122	16	(∃ व) (व एक मनुष्य है)	(∃ व) [(व एक मनुष्य है)
122	21	(∃ व (म$_{\text{व}}$ · नि$_{\text{य ल}}$)	(∃ व) (म$_{\text{व}}$ · नि$_{\text{य ल}}$)
123	10	~(र) मि$_{\text{य र}}$)]	~(∃ र) मि$_{\text{य र}}$]
123	9	(∃ र) मि$_{\text{य र}}$)]	(∃ र) मि$_{\text{य र}}$]
124	1	परिमाण	परिमाणन
124	14	v एवं ~	µ एवं v
124	17	युक्त	मुक्त
124	19	(य) त$_{\text{य}}$	(∃ य) त$_{\text{य}}$
125	2	(∃$_{\text{य}}$ ~ त$_{\text{य}}$	(∃ य)~त$_{\text{य}}$
125	16	∴ (य)	∴ (∃ य)
125	23	(E य)	(∃ य)
125	23	7 से आ. सा. द्वारा	7 से अ. सा. द्वारा
126	15	उसे	उससे
127	13	य $^{\text{या}}$ र	य $^{\text{मा}}$ र
127	20	य (व भा)$_{\text{र}}$	य (व/भा)$_{\text{र}}$
127	21	य व/भा पि)$_{\text{र}}$	य(व/भा/पि)$_{\text{र}}$
128	15	जैसे	कैसे
128	22	प्रत्यक्ष	प्रत्यय
131	4	दोतो	दोनों
132	6	अनुसार होगा।	अनुसार 5 होगा।
133	8	आकृति नं० 5	चित्र नं० 5
133	20	'क' और 'ख' दो वर्ग	'क' और 'ख' वर्ग
134	21	प्रयोग सार्थकता	प्रयोग हम सार्थकता
135	शीर्षक	अर्थीकरण	अर्थनिर्णय
138	1	'ए' तथा 'इ'	'इ' तथा 'ए'

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
138	6	चित्रों का सामान्यता	चित्रों की सामान्यता
139	1	(चित्र नं० 14)	चित्र (नं० 14)
139	शीर्षक	चतुस्र	चतुरस्र
139	6	चतुस्र	चतुरस्र
140	4	इ : क ख $\neq$ 0 संदिग्ध	आइ : क ख $\neq$ 0 संदिग्ध
141	बीच में	सत्य असत्य	
142	4	क ख $\neq$ 0 सत्य	ओ : क ख $\neq$ 0 सत्य
144	4	'इ $\supset \sim$ ओ';	'इ $\supset$ ओ';
144	26	जैसा	जैसाकि
150	10	की	को
150	14	होंगें ।	होगा ।
151	अन्तिम	थे—	हैं—
152	13	चूंकि वर्गों	वर्गों
153	9	∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0 ∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0	∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0 ∴ क ग = 0
153	10	सिनेरे	सिज़ेरे
153	16	∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0 ∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0	∴ क ग = 0 ∴ क ग = 0
153	23	∴ क $\underline{\text{ग}}$ = 0	∴ क ग = 0
154	4	में और एक	में एक
155	12	ख ग $\neq$	ख ग $\neq$ 0
156	9	ख ग = 0, क ख = 0 अत:	ख $\underline{\text{ग}}$ = 0, क $\underline{\text{ख}}$ = 0 अत:
157	14	जानते कि	जानते है कि
157	20	क = क (ख)	क = क (स)
157	23	'क ख'	'क $\underline{\text{ख}}$'
157	24	'क ख'	'क $\underline{\text{ख}}$'
158	17	क ग (स) = 0	क $\underline{\text{ग}}$ (स) = 0
158	19	= (वितरण	= 0 (वितरण
158	20	क $\underline{\text{ख}}$ $\underline{\text{ग}}$ +	क ख $\underline{\text{ग}}$ +
158	20	(प्रतिवर्तन	(क्रम विनिमेयता
158	25	'क ख $\underline{\text{ग}}$'	'क $\underline{\text{ख}}$.ग'

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
158	26	'क ख̲ ग̲'	'क ग्व ग̲'
159	7	होती	होता
160	2	(क ख = 0	(क ख̲ = 0
160	4	⊃(क̲ ख ग = 0)	⊃(क̲ ख ग + = 0)
160	22	भूत—प्रेत	भूत-प्रेत
164	16	1910	1960
166	11	आधिपत्य	—range of का आधिपत्य
166	19	मध्यमभाव	मध्याभाव
166	22	अभिव्येंजक	अभिव्यंजक
167	3	—Tantology	Tautology
168	17	Modus Ponecns	Modus Ponens
168	25	अवष्य भावन	अवश्य भावन

अनुक्रमणिका